

तृतीय अध्याय

मोहन राकेश के नाटकों में परंपरा और आधुनिकता

आधुनिक यांत्रिक युग ने एक ऐसे समाज का निर्माण किया है, जहाँ परंपरागत जीवन मूल्यों का विघटन हो रहा है। मनुष्य अपने निर्णय को लेकर द्वंद्वात्मक स्थिति में है। अस्तित्व की तलाश में आज लोग निरंतर प्रयासरत हैं। पारंपरिक विघटन की बात करें तो मानवीय संबंधों में परिवार एक ऐसी इकाई है, जो सबसे ज्यादा प्रभावित हुई है। संयुक्त पारिवारिक मूल्य टूटते जा रहे हैं। हमारे परंपरागत मूल्यों में किसी भी रिश्ते का आधार जहाँ प्रेम और सौहार्द होता था, वह आज के युग में सिर्फ एक आवरण ओढ़े सतही मात्र रह गया है।

मोहन राकेश ऐसे ही द्वंद्वों में उलझे मनुष्यों के जीवन को मिथकीय नाट्य कथा और ऐतिहासिक चरित्रों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। मोहन राकेश 60 के दशक में आधुनिक हिंदी नाटक के अग्रदूत माने जाते हैं। अपने अल्प जीवन काल में इन्होंने कुल तीन नाटकों की रचना की, 'आषाढ़ का एक दिन'(1958), 'लहरों के राजहंस'(1963), 'आधे-अधूरे'(1969) और अंतिम नाटक 'पैर तले की जमीन' है, जिसे लिखते हुए उनकी असमय मृत्यु हो गई। उनकी नोटिंग के आधार पर उनके मित्र कमलेश्वर ने बाद में इस नाटक को पूरा किया है।

3.1 आषाढ़ का एक दिन

नाट्य कथानक को देखें तो इसका संबंध संस्कृत के महाकवि कालिदास के जीवन से संबंधित है, किन्तु यह एक ऐतिहासिक नाटक नहीं है। नाटककार का उद्देश्य मात्र यहाँ कालिदास के जीवन, युग और रचना संसार की मदद से आज के समकालीन मानव, उसके द्वंद्व, साहित्य, साहित्यकार का कर्तव्य और राजाश्रय आदि बड़े प्रश्नों को बड़ी संवेदना तथा निष्ठा से चित्रित करना है। नाटक में

चरित्र ऐतिहासिक है, किन्तु कथा मिथकीय है। अतः इसमें ऐतिहासिक तथ्य ढूँढना व्यर्थ है। कथा का मुख्य स्रोत कालिदास का जीवन होते हुए भी कथा में घटना चक्र मुख्यतः कालिदास की प्रेयसी मल्लिका के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। नाटक का प्रारंभ ही आषाढ़ के पहले दिन से शुरू होता है, जहाँ धारासार वर्षा होती रहती है और मल्लिका भी वर्षा जल और अन्दर से कालिदास के प्रेम में भीगी घर में प्रवेश करती है, “आषाढ़ का पहला दिन और ऐसी वर्षा माँ ! ऐसी धारासार वर्षा ! दूर-दूर तक की उपत्यकाएँ भीग गयीं और मैं भी तो ! देखो ना माँ, कैसी भीग गयी हूँ !”¹ मल्लिका की माता अम्बिका क्षुब्ध रहती है क्योंकि कालिदास का व्यक्तित्व उसे आत्मकेंद्रित लगता है। उसे लोक निंदा का भय रहता है। अम्बिका की यह चिंता एक माता की पुत्री के प्रति चिंता है। किन्तु मल्लिका तो कालिदास के प्रति पूर्ण समर्पित है। मल्लिका के मन में लोक निंदा का कोई भय नहीं होता है। कालिदास की सफलता में अपने जीवन की सफलता मानती है तभी वह अपनी माता अम्बिका से कहती है, “तुम्हारे दुःख की बात भी मैं जानती हूँ, फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता। मैंने भावना में एक भावना का वरन किया है। मेरे लिए वह संबंध और सभी संबंधों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है...।”² मल्लिका के इस कथन से उसका परंपरागत भारतीय नारी रूप उभर कर सामने आता है। उसके लिए उसका प्रेम सिर्फ रूप या मांसल आकर्षण नहीं है। मल्लिका का प्रेम निश्छल भावनाओं का है जो आंतरिक है, जिसका संबंध आत्मा से है। भावनाएँ कोमल होती हैं तभी वह अपने प्रेम को कोमल बताती है, साथ ही ऐसे प्रेम का संबंध किसी बाह्य शारीरिक रूप आकृति से नहीं होता, भावनात्मक होता है। अतः वह उसे अनश्वर भी बताती है। नाट्य कथा में आगे कुछ ही क्षणों में कालिदास एक आहत हरिणशावक को लिए हुए आता है। जिसका उपचार कालिदास और मल्लिका मिलकर करते हैं। उसी बीच दंतुल नामक एक राजपुरुष आकर उस हरिणशावक पर अपना अधिकार जताता है और कालिदास से तर्क-वितर्क करने लगता है। किन्तु कालिदास यह कहकर कि इस प्रदेश में हरिण का आखेट निषेध है किन्तु वह यहाँ का नहीं है, इसीलिए उसे अपराधी नहीं माना जाएगा। इसी बीच मल्लिका के मुख

से कालिदास का नाम सुनकर दंतुल चकित रह जाता है और कालिदास की रचना 'ऋतुसंहार' की लोकप्रियता के बारे में मल्लिका को बताता है। इसके अलावा यह भी बताता है कि उज्जयिनी के राजा उसे राजकवि के रूप में सम्मानित करना चाहते हैं, जिसके लिए उन्होंने आचार्य वररुचि को भेजा है। किन्तु कालिदास यह प्रस्ताव प्रारंभ में स्वीकार नहीं करते हैं क्योंकि वह अपनी मिट्टी से और अपनी प्रेमिका मल्लिका से दूर नहीं होना चाहते हैं। क्योंकि दोनों ही उसके रचना-संसार के लिए प्रेरणा स्रोत होते हैं। कालिदास कहते हैं, "मैं अनुभव करता हूँ कि यह ग्राम-प्रांतर मेरी वास्तविक भूमि है, मैं कई सूत्रों से इस भूमि से जुड़ा हूँ। उन सूत्रों में तुम हो, यह आकाश और ये मेघ हैं, यहाँ की हरियाली है, हरिणों के बच्चे हैं, पशुपाल हैं।"³ किन्तु मल्लिका कई तर्कों से आग्रह करती है कि वह इस प्रस्ताव को स्वीकार कर ले। वह कालिदास से कहती है, "यह क्यों नहीं सोचते कि नयी भूमि तुम्हें यहाँ से अधिक सम्पन्न और उर्वरा मिलेगी इस भूमि से तुम जो कुछ ग्रहण कर सकते थे, कर चुके हो। तुम्हें आज नयी भूमि की आवश्यकता है, जो तुम्हारे व्यक्तित्व को अधिक पूर्ण बना दे। कोई भूमि ऐसी नहीं जिसके अंतर में कोमलता न हो। तुम्हारी प्रतिभा उस कोमलता का स्पर्श अवश्य पा लेगी।"⁴ मल्लिका के इन तर्कों को सुनकर कालिदास दुखी मन से उज्जयिनी जाने के लिए तैयार हो जाता है और राजकवि का पद स्वीकार कर लेता है। नाट्य कथा के पहले अंक में कथा के साथ एक मूल्यबोध जुड़ा हुआ दिखता है, जिसकी जड़ें परंपरा से जुड़ी होती हैं। जहाँ प्रेम होता है और रिश्तों में एक गहराई होती है, समर्पण होता है। अपनी मिट्टी और प्रेम के आगे भौतिक सुख और शोहरत छोटी चीज होती है। जिनका प्रतीक कालिदास, मल्लिका और उनका प्रेम होता है।

उज्जयिनी में कालिदास न केवल राजकवि का पद ग्रहण करते हैं, बल्कि उनका विवाह गुप्तवंश की राजकुमारी प्रियंगुमंजरी से हो जाता है। इसके अतिरिक्त कालिदास चार और बड़े महाकाव्यों की रचना करते हैं, जिससे उनकी ख्याति चारों ओर और भी फैल जाती है। मल्लिका कालिदास की रचना, प्रदेश के व्यवसायियों से खरीदकर निरंतर पढ़ती रहती है और उसकी सफलता पर हर्षित होती है। किन्तु जहाँ कालिदास की रचना-कृति और उसके लेखकीय व्यक्तित्व को यश मिलता जाता है,

वहीं मल्लिका और उसकी माँ अम्बिका के हालात दिन-प्रतिदिन खराब होते चले जाते हैं। कुछ समय के पश्चात् अम्बिका का निधन हो जाता है। जीवन में निःसहाय मल्लिका अंततः टूट जाती है और अपने जीवन यापन हेतु विलोम से विवाह कर लेती है। जिसे वह बिल्कुल भी पसंद नहीं करती थी। किन्तु इसके उपरान्त भी मल्लिका कालिदास के बेहतर भविष्य की कामना मन में रखती है।

कालिदास से मातृगुप्त बनकर कालिदास कश्मीर का शासक बनता है, किन्तु उसका मन कहीं भी नहीं रमता और वह शासन व्यवस्था को त्याग सन्यासी बन जाता है। इसकी जानकारी मल्लिका को एक दिन मातुल उसके घर आकर देता है। जिससे मल्लिका बिल्कुल टूट जाती है और यही सोचती है कि आज उसकी साधना खंडित हो गई। मल्लिका कालिदास को हमेशा ही एक महान कवि के रूप में देखना चाहती थी। किन्तु उसके सन्यासी बनने की खबर पाकर उसका सपना मानों टूट जाता है। अपने विचारों में मल्लिका खोई रहती है तभी बारिश में भीगा अस्त-व्यस्त हालत में कालिदास मल्लिका के घर में प्रवेश करता है। मल्लिका कालिदास को देखकर खड़ी हो जाती है। कालिदास कहता है, “संभवतः पहचानती नहीं हो और न पहचानना ही स्वाभाविक है, क्योंकि मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ जिसे तुम पहले पहचानती रही हो, दूसरा व्यक्ति हूँ और सच कहूँ तो वह व्यक्ति हूँ जिसे मैं स्वयं नहीं पहचानता!”⁵ कालिदास के इस संवाद से आज के आधुनिक मानव के अन्दर से टूटने का आभास होता है। कालिदास जिस प्रकार अपने व्यक्तित्व की खोज में उज्जयिनी से कश्मीर और फिर कश्मीर से वापस अपने प्रांत लौटकर आता है। वैसे ही आज का मनुष्य भी अपने व्यक्तित्व निर्माण हेतु भटकता रहता है। उसे खुद नहीं पता रहता है कि उसकी आत्मीय खोज कहाँ जाकर समाप्त होगी ? कालिदास सारे भौतिक सुख, सारे राज्य वैभव प्राप्त करके भी अन्दर से खुश नहीं हो पाता है। अपने व्यक्तित्व को खोजते हुए फिर अंततः जहाँ से शुरू किया था अर्थात् मल्लिका और अपने प्रांत से फिर वहीं आकर रुक जाता है जहाँ उसके व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था और महाकाव्य की रचना हेतु प्रेरणा मिलती थी। किन्तु उसके वापस आने के बाद समय बदल चुका होता है। इस सन्दर्भ में गोविन्द चातक लिखते हैं, “वास्तव में, घर की खोज उस आत्मीयता की खोज है जो सबसे

बड़ी विडंबना बन जाती है। कालिदास में अपने परिवेश के लिए एक ऐसी भूख दिखाई देती है जो उसे विगत अनुभवों से जोड़ती है। निर्वासित व्यक्ति का गृह-विरह (नास्टैलजिया) सर्वथा मानवीय है और अस्तित्व की मूल प्रवृत्ति है। यह आत्मा की, अंतःप्रज्ञा की नैतिक परिणिति है। मानव अपने जीवन में भोगे हुए पूर्ण क्षणों को पकड़ने की कोशिश में रहता है जिससे वह अपनी निजता, अस्मिता और अस्तित्व की पूर्णता अनुभव कर सके। कालिदास भी थका, टूटा-हारा किसी ऐसे क्षण में मल्लिका के द्वार पर पहुँचता है जब समय स्वयं रुक जाता है या उसके पाँव स्वयं रुक जाते हैं। काल के इसी ठहराव के क्षण में उसे यह अनुभव होता है जैसे कि वह पीछे रह गया, समय आगे भाग गया, वह किसी की प्रतीक्षा नहीं करता !”⁶ नाट्य कथा में आगे कालिदास और मल्लिका के बीच अतीत में देखे सपने और बीते कल की बातें होती रहती हैं, उसी समय अन्दर से बच्चे के रोने की आवाज सुनाई देती है और कालिदास को उस समय का आभास हो जाता है, जो उसके समय से आगे निकल चुका होता है। कालिदास समझ जाता है कि समय किसी के लिए प्रतीक्षा नहीं करता है। कालिदास वहाँ की परिस्थितियों को समझ धीरे से निकल जाता है। इस प्रकार मोहन राकेश का यह नाटक ‘आषाढ़ का एक दिन’ ऐतिहासिक चरित्रों और मिथकीय पौराणिक कथा के समावेश से आज के आधुनिक मानव के आंतरिक द्वंद्व, अस्मिता की खोज और टूटने की कथा को ही प्रस्तुत करता है।

मानव परंपरा का वाहक होता है और मानव ही पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक-दूसरे को इसे आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी सौंपता है। आधुनिकता को परिभाषित करने के लिए हमें परंपरा का भी गहरा बोध होना आवश्यक है। आधुनिकता की जड़ें परंपरा से जुड़ी हैं। जब हम किसी रचना में आधुनिक तत्व खोजने का प्रयास करते हैं तब हमें यह देखना होगा कि हम आधुनिकता के किस रूप को जानने का प्रयत्न कर रहे हैं ? हमारा उद्देश्य आधुनिकता के बाह्य रूप से या आंतरिक रूप से है ? आधुनिकता के साथ मानव के जीवन-शैली में कौन-कौन से परिवर्तन आए ? आधुनिक जीवन के बाह्य और आंतरिक रूप से क्या तात्पर्य है ? मानव ने आधुनिकता से क्या पाया और क्या खोया है ? आज

आधुनिक काल में मानव के सामने कौन-कौन सी चुनौतियाँ हैं ? अतः इन्हीं प्रश्नों का उत्तर हम मोहन राकेश के नाटकों में ढूँढने का प्रयत्न करेंगे ।

‘आषाढ़ का एक दिन’ नाटक का समग्र-मूल्यांकन करें तो इस नाटक का संबंध परंपरा और आधुनिकता दोनों से है । मोहन राकेश को अपनी परंपरा का गहरा बोध था । परंपरागत मूल्यों से कट द्रव्यात्मक जीवन में उलझे आधुनिक मानव के जीवन को चित्रित करने में नाटककार को पूर्ण सफलता मिली है । इस सन्दर्भ में गिरीश रस्तोगी लिखती हैं, “अपनी नींव अपनी परंपरा, संस्कार, दृष्टि से एकदम कटकर कुछ बाहरी प्रभावों के चकाचौंध में पड़कर बह जाना, लिख जाना राकेश को कभी मान्य ही नहीं रहा ।”⁷ इस नाटक को देखें तो ऐसा प्रतीत होता है मानो जैसे यह एक ऐतिहासिक नाटक हो । किन्तु सही मायने में यह एक आधुनिक नाटक है यह नाटक आधुनिक मानव के जीवन-यथार्थ को प्रस्तुत करता है । यह नाटक अतीत की कथा को दोहराता नहीं है, न ही इस नाटक में पात्रों का जमघट है । हर एक पात्र कथा के उद्देश्य के अनुरूप ही है । इस नाटक से मोहन राकेश का एक ही उद्देश्य है, आधुनिक मानव के द्वंद्व और उसके जटिल जीवन को प्रस्तुत करना । इसलिए इस नाटक में आधुनिकता और ऐतिहासिकता का समन्वय नहीं किया गया है, बल्कि यह नाटक प्रारंभ से अंत तक आधुनिकता और उसके यथार्थ को बड़ी सूक्ष्मता से स्पष्ट करता चलता है । मोहन राकेश अपने अगले नाटक ‘लहरों के राजहंस’ की भूमिका में इतिहास और साहित्य के संबंध को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, “इतिहास या ऐतिहासिक व्यक्ति का आश्रय साहित्य को इतिहास नहीं बना देता है । साहित्य का ऐसा उद्देश्य कभी नहीं रहा । इतिहास के रिक्त कोष्ठों की पूर्ति करना भी साहित्य का उपलब्धि-क्षेत्र नहीं है । साहित्य इतिहास के समय से बंधता नहीं, समय में इतिहास का विस्तार करता है, युग को युग से अलग नहीं करता, कई युगों को एक साथ जोड़ देता है ।”⁸

‘आषाढ़ का एक दिन’ नाटक का संबंध यूँ तो कालिदास के जीवन से है, लेकिन यह नाटक कालिदास के महान कवि बन जाने के बाद का नाटक नहीं है, बल्कि एक कवि के रूप में अपनी पहचान बनाते हुए संघर्षशील व्यक्ति का है, सफलता के चरम शिखर पर पहुँच जाने वाले कवि और उससे जुड़े

उसके जीवन का है। नाटक का संबंध कालिदास के जीवन से होते हुए भी मोहन राकेश ने मल्लिका के जीवन अन्तरंग को अधिक प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। मल्लिका एक ऐसी परंपरावादी लड़की है जिसकी भावना कोमल है, प्रेम में समर्पित है, इसके बावजूद अपने जीवन मूल्यों के प्रति बिल्कुल स्पष्ट और आधुनिक है, जो हर एक परिस्थिति में निर्णय लेना जानती है, उससे लड़ना जानती है। मल्लिका की प्रेम भावना कोमल और नश्वर है वह कहती है कि उसने भावना में एक भावना का वरन किया है। मल्लिका की एक ही आकांक्षा है वह कालिदास के व्यक्तित्व को सफलता के शीर्ष पर देखना चाहती है। जिसके लिए वह अपनी सारी खुशियों का त्याग कर देती है। मल्लिका कालिदास को एक महान कवि के रूप में देखना चाहती है। मल्लिका का यही त्याग एवं समर्पण भाव सम्पूर्ण नाटक में अपना अलग ही विशिष्ट प्रभाव छोड़ता है। जिससे एक बार ऐसा आभास होता है कि यह नाटक मल्लिका को केन्द्रित करके लिखा गया हो, क्योंकि मल्लिका के त्याग समर्पण के आगे कालिदास का व्यक्तित्व छोटा प्रतीत होने लगता है। नाटक में एक स्थान पर कहे गए मल्लिका के संवाद से उसके समर्पण भाव का बोध होता है, “इसलिए कि मैं टूटकर भी अनुभव करती रही कि तुम बने रहो। क्योंकि मैं अपने को अपने में न देखकर तुममें देखती थी।”⁹ भारतीय परंपरा में स्त्रियाँ त्याग और समर्पण की मूरत मानी जाती रही हैं और प्रेम संबंध में त्याग और समर्पण की तो कई स्त्रियों की कथा लोक प्रसिद्ध है। मल्लिका भी उसी परंपरा की एक श्रेष्ठ नाट्य पात्र-चरित्र है। मल्लिका के प्रेम समर्पण की कालिदास के समर्पण के साथ तुलना करें तो कालिदास को आलोचकों ने आत्मकेंद्रित बताया है। कालिदास द्वंद्व में घिरा एक आधुनिक मानव का द्योतक है। जो मल्लिका से अगाध प्रेम करने के बाद भी उज्जयनी चला जाता है। वहाँ कई महाकाव्यों की रचना भी करता है। इसके लिए वह प्रेरणा का केंद्र मल्लिका को ही मानता है, किन्तु समय रहते वह लौटकर नहीं आता है। कश्मीर जाते हुए भी वह अपने प्रांत से गुजरता है किन्तु मल्लिका से भेट नहीं करता है। वह दो जिंदगियों के पाटों में फंसकर रह जाता है। वह निर्णय लेने में एक आधुनिक मानव के समान प्रतीत होता है जो संशय में रहता है। कालिदास लौटकर भी तब आता है जब

परिस्थितियाँ उसे बाध्य कर देती हैं। वहीं मल्लिका का व्यक्तित्व कालिदास की तुलना में अधिक स्पष्ट है, वह किसी भी परिस्थिति में निर्णय स्वयं लेती है। गोविन्द चातक इस सन्दर्भ में लिखते हैं, “यह निश्चल भाव उस कालिदास के प्रति है जो बेहद आत्मकेंद्रित ‘कैरियरिस्ट’ व्यक्ति है। उसे मल्लिका की याद तब आती है जब परिस्थितियाँ उसे उसके लिए बाध्य करती हैं और तब वह उस पूर्व-प्रेम की कड़ियों को फिर से जोड़ने का प्रयत्न करता है। कुमारसम्भव की पृष्ठभूमि हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो मेघदूत के यक्ष की पीड़ा। मेरी पीड़ा हो और विरह-विमर्दिता यक्षणी तुम हो। ‘अभिज्ञान शाकुन्तलम्’ में शकुन्तला के रूप में तुम्हीं मेरे सामने थीं। तो क्या कालिदास दोहरा जीवन जीता रहा? दोहरा जीवन तो मल्लिका भी जीती है। वस्तुतः कालिदास और मल्लिका का यह प्रेम-भाव उन धारणाओं को ही रेखांकित करता है जो नीत्शे, बाल्ज़ाक, बायरन आदि व्यक्त कर चुके हैं कि प्रेम स्त्री का सम्पूर्ण अस्तित्व है और पुरुष के लिए एक आवयशकता मात्र है। पुरुष की जिंदगी प्रसिद्धि है और स्त्री की प्रेम। पुरुष का प्रेम और उसका जीवन दो अलग वस्तुएँ हैं; स्त्री के लिए प्रेम आस्था है।”¹⁰

एक दृष्टि से यह नाटक कालिदास, मल्लिका और उनके प्रेम पर आधारित लगता है। परंतु इस नाटक की उपलब्धि एक प्रेम कथा और उसकी सफलता या असफलता को कहने में नहीं है। यह नाटक आधुनिक मानव के अंतर्द्वंद्व, विवशता और जटिलता को चित्रित करता है। कालिदास प्रतीक है आज के उस आधुनिक मानव और साहित्यकार का जो अपने व्यक्तित्व निर्माण के लिए सत्ता से जुड़ता है, किन्तु अपने व्यक्तित्व निर्माण के इस प्रयास में अपना अस्तित्व ही खो देता है। हालात ऐसे हो जाते हैं कि न वह व्यवस्था से जुड़ कर रह पाता है और न ही व्यवस्था को छोड़ पाता है। द्वंद्व मानो उसकी जिंदगी की नियति बन जाता है। नाटक में द्वंद्व आज के आधुनिक मानव और एक साहित्यकार का द्वंद्व है। इस सन्दर्भ में राकेश ने एक लेख लिखा था ‘साहित्यकार की समस्याएँ’ जिसे उन्होंने एक साहित्य संगोष्ठी में चंडीगढ़ में पढ़ा था। वे लिखते हैं, “एक साहित्यकार की मूल समस्या है साहित्यकार के रूप में अपना व्यक्तित्व बनाये रखने की। साहित्यकार की आर्थिक

स्वतंत्रता और विचारों एवं मान्यताओं की दृष्टि से उसकी स्वतंत्रता एक अहम सवाल है। अगर यह स्वतंत्रता नहीं है तो लेखक का व्यक्तित्व कुंठित होता है क्योंकि समझौता अनिवार्य रूप से उसके व्यक्तित्व को तोड़ता है।”¹¹

मोहन राकेश ने इस नाटक में कालिदास के माध्यम से आज के एक आधुनिक सृजनशील साहित्यकार, उसके परिवेश और व्यवस्था में उलझे उसके जीवन को दिखाने का प्रयत्न किया है। कालिदास जिस प्रकार से राजकीय सम्मान और राज्याश्रय प्राप्त करने पर उत्पन्न परिस्थितियों से घिर जाते हैं और उससे मुक्ति हेतु व्यथित रहते हैं, उसी प्रकार आज का मानव भी अपनी अंतरात्मा को मार कर व्यवस्था का हिस्सा तो बन जाता है, परंतु कभी भी वह अपनी अंतरात्मा से स्वतंत्र महसूस नहीं कर पाता है। व्यवस्था से यहाँ अर्थ सिर्फ सत्ता से नहीं है, बल्कि किसी भी संस्था से है जिससे न चाहते हुए भी आज का मनुष्य नाम और अर्थ के लिए जुड़ तो जाता है लेकिन हमेशा ही द्वंद्व से घिरा रहता है। तब न उसे वह छोड़ पाता है न उसे निकलने का मार्ग दिखाई देता है। नाटक के तीसरे अंक में मोहन राकेश ने आधुनिक मनुष्य के इन्हीं द्वंद्वों की परिस्थितियों को कालिदास की जीवन परिस्थितियों से जोड़कर प्रस्तुत किया है। कालिदास मल्लिका से कहता है, “परंतु मैं यह भी जानता था कि मैं सुखी नहीं हो सकता। मैंने बार-बार अपने को विश्वास दिलाना चाहा कि कमी उस वातावरण में नहीं मुझमें है। मैं अपने को बदल लूँ, तो सुखी हो सकता हूँ, परंतु ऐसा नहीं हुआ। न तो मैं बदल सका, न सुखी हो सका। अधिकार मिला, सम्मान बहुत मिला, जो कुछ मैंने लिखा उसकी प्रतिलिपियाँ देशभर में पहुँच गयीं, परंतु मैं सुखी नहीं हुआ। एक राज्याधिकारी का कार्यक्षेत्र मेरे कार्यक्षेत्र से भिन्न था और जिस विशाल में मुझे रहना चाहिए था उससे दूर हट आया हूँ। जिस कल की मुझे प्रतीक्षा थी, वह कल कभी नहीं आया और मैं धीरे-धीरे खंडित होता गया और एक दिन मैंने पाया कि मैं सर्वथा टूट गया हूँ।”¹²

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कालिदास इस नाटक में एक खंडित पात्र है। जो प्रतीक है आज के आधुनिक मानव का, जिसका व्यक्तित्व भी खंडित है। कालिदास नाटक में ऐसे द्वंद्वों से

घिरा इंसान है जो किसी बड़े अवसर पर निर्णय लेने में कमजोर है। मोहन राकेश ने इस नाटक में कालिदास को सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक बताया है। किन्तु नाटक में कालिदास के व्यक्तित्व का सृजनात्मक स्वरूप कम और एक आधुनिक, खंडित, द्वंद्वों से घिरा हुआ दुर्बल इच्छा शक्ति का मानव अधिक सिद्ध होता है। अतः मोहन राकेश का उद्देश्य ऐतिहासिक महाकवि कालिदास का चित्रण करना नहीं था। अतः नाटक में कालिदास के चरित्र की सार्थकता आज के सन्दर्भ में अधिक है। नाटक में मूलतः समस्या विच्छिन्नता और अलगाव की है। कालिदास चाहे-अनचाहे अपने जड़ मूल से उखड़कर जिस संबंधहीनता, अकेलेपन तथा संत्रास के वातावरण में चला जाता है वह आधुनिक मानव की भी नियति बन चुकी है। राकेश ने सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक कालिदास को माना है। किन्तु इसके साथ वह आज के आधुनिक जीवन में समाहित उस चेतना का अंग भी है जहाँ गृह-विरह है। आज अपने परिवेश से कटकर आरोपित या अर्जित जीवन की पृष्ठभूमि में मनुष्य के आंतरिक और उसकी नियति को यह नाटक बड़ी बेबाकी और विडंबनापूर्ण ढंग से दर्शाता है। कालिदास अपनी जड़ अर्थात् भूमि से उखड़कर बिखर जाता है। उसकी अंतरात्मा खंडित हो जाती है, वहीं मल्लिका अपने त्याग, समर्पण के बाद भी खंडित नहीं दिखती है, स्थिर प्रतीत होती है। जीवन के प्रति उसकी दृष्टि आशावादी होती है। तभी कालिदास से मल्लिका का चरित्र अधिक सफल और सार्थक दिखता है।

‘आषाढ़ का एक दिन’ नाटक एक चरित्र प्रधान नाटक है। कथा से अधिक चरित्र उभरकर पाठक या दर्शकों के सामने आते हैं। मोहन राकेश ने इस नाटक में चरित्रों की सृष्टि बहुत ही स्वाभाविक रूप में की है। नाटक का एक छोटा पात्र भी आधुनिक परिवेश से उत्पन्न एक प्रतीकात्मक चरित्र लगता है। मोहन राकेश अपने नाट्य परंपरा के प्रति बिल्कुल एक सजग नाटककार थे। राकेश ने अपने प्रथम दोनों नाटकों में परंपरा और प्रयोग को स्थान दिया है। तभी उन्होंने इस नाटक में लोकजन में प्रचलित कालिदास जैसे ऐतिहासिक पौराणिक चरित्र की सृष्टि एक मिथक कथा से जोड़कर की है। इसके साथ के अन्य पात्रों जैसे- मल्लिका, विलोम, अम्बिका, मातुल, प्रियंगु, दंतुल आदि

मिथकीय चरित्रों की कल्पना कर कालिदास की जिंदगी से ऐसे जोड़कर प्रस्तुत करते हैं कि सभी पात्र वास्तविक एवं जीवंत चरित्र प्रतीत होने लगते हैं। जो आधुनिक मानवों की विड़म्बनापूर्ण जिंदगी को ही चित्रित करते हैं।

कालिदास-

नाटक का मुख्य पात्र कालिदास है इसलिए सर्वप्रथम कालिदास के चरित्र पर दृष्टि डालें तो नाटक के प्रथम अंक में कालिदास एक संवेदनशील, भावुक और उदार व्यक्तित्व का है, इसके अतिरिक्त सहृदय कवि जिसमें एक आत्माभिमान दिखता है, “हम जिएँगे हरिणशावक ! जिएँगे न ? एक बाण से आहत होकर हम प्राण नहीं देंगे। हमारा शरीर कोमल है, तो क्या हुआ ? हम पीड़ा सह सकते हैं। एक बाण प्राण ले सकता है, तो उंगलियों का कोमल स्पर्श प्राण दे भी सकता है। हमें नए प्राण मिल जाएँगे। हम कोमल आस्तरण पर विश्राम करेंगे। हमारे अंगो पर घृत का लेप होगा। कल हम फिर वनस्थली में घूमेंगे। कोमल दूर्वा खाएँगे। खाएँगे न ?”¹³ किन्तु कालिदास प्रथम अंक के अंत तक द्वंद्व में घिरा हुआ दिखता है। जिसके बाद कालिदास का आत्मसंघर्ष ही दिखता है। उसका कोई भी सबल पक्ष उभरकर सामने नहीं आता है। राजकीय सम्मान और राजकवि का पद प्रस्ताव पाकर न चाहते हुए भी वह उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है। अतिरिक्त इसके कि मल्लिका के आगे अपने भीगे नयनों से विदा लेता है। एक कवि एक रचनाकार होने के नाते उसका विरोधी संघर्ष वहाँ दिख सकता था, जबकि कालिदास मल्लिका से कुछेक एक तर्क के बाद यह कहकर, “इसका अर्थ है तुमसे विदा लूँ।”¹⁴ वहाँ से कालिदास चला जाता है। नाटककार ने भी दृश्य निर्देश में लिखा है, “कालिदास पल-भर आँखे मूंदे रहता है। फिर झटके से चला जाता है।”¹⁵ कालिदास की यह द्वंद्वात्मक प्रतिक्रिया ही उसके चरित्र को नाटक में मल्लिका के त्याग और समर्पण के आगे छोटा बना देती है और मल्लिका का चरित्र महान दिखने लगता है। कश्मीर का शासन संभालने कालिदास जब जा रहा होता है तब वह अपने प्रांत के पास से गुजरता है, किन्तु वह अपने प्रांत नहीं जाता है, न मल्लिका से मिलता है। कालिदास को यह भय रहता है कि अगर वह वहाँ गया तो उसका प्रांत,

वहाँ की पर्वतमाला, वहाँ की उपत्यकाएँ कहीं उससे मूक प्रश्न न कर बैठें। मल्लिका से मिलने पर उसकी आँखें उसे बैचैन न कर दें। जो प्रांत और प्रेमिका उसकी काव्य रचना की प्रेरणा थीं, उनके बारे में एक बार भी कालिदास नहीं सोचता है। वह नहीं सोचता है कि मल्लिका इस बात को जानकार कितनी दुखी होगी। इस प्रकार कालिदास का चला जाना उसके कमजोर व्यक्तित्व को दर्शाता है। कालिदास अंततः जब नाटक में थका हारा मल्लिका के घर आता है तब वह अपने आप को और अपने द्वंद्व को स्पष्ट करने का निरंतर प्रयत्न करता रहता है। किन्तु समय का जब उसे आभास होता है कि जिस अंत से आरम्भ करने की वह बात कर रहा है, वह समय अब बीत चुका है, तब वह बिना कुछ बोले चला जाता है। कालिदास की इस प्रतिक्रिया से हर बार ऐसा प्रतीत होता है जैसे मानो उसमें समस्याओं से संघर्ष करने की शक्ति ही न हो। उसका दुर्बल पक्ष यहाँ भी उभरकर सामने आता है। नाटक में कहीं भी उसका सृजनात्मक व्यक्तित्व देखने को नहीं मिलता। वह एक आधुनिक मानव की तरह द्वंद्वों से घिरा एक साधारण मानव लगता है। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं उसके संवादों से उसमें एक महाकवि की झलक मिलती है और इस प्रकार कालिदास में एक दुर्बल इच्छा शक्ति का इंसान ही दिखता है। इस सन्दर्भ में विलोम का पात्र-चरित्र कालिदास से अधिक विश्वसनीय और सुलझा हुआ, स्वाभाविक और प्रभावशाली लगता है। नेमिचंद्र जैन इस सन्दर्भ में लिखते हैं, “अंततः नाटक में उद्धाटित उसका व्यक्तित्व न तो किसी मूल्यवान और सार्थक स्तर पर स्थापित ही हो पाता है और न इतिहास प्रसिद्ध कवि कालिदास को और न इस प्रकार उस माध्यम से समस्त भारतीय सृजनात्मक प्रतिभा को कोई गहरा विश्वसनीय आयाम दे पाता है। यह जरूरी नहीं है कि महान लेखक में महान गुण भी होंगे। दुर्बलताएँ उसमें भी हो सकती हैं, लेकिन उन दुर्बल पक्षों में दबकर उसका असाधारण प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व खो नहीं जाना चाहिए।”¹⁶

आज भी आधुनिक युग में कई साहित्यकार अपने व्यक्तित्व और रचना को एक सफल और बेहतर मंच देने के लिए व्यवस्था से जुड़ते हैं जैसे नाटक में कालिदास जुड़ता है। किन्तु आगे चलकर उनका सृजनात्मक व्यक्तित्व स्वतंत्र नहीं रह पाता है। प्रो. रमेश गौतम ने लिखा है, “कालिदास के माध्यम

से सरकारी सम्मान प्राप्त होने पर सुविधाभोगी कलाकार या साहित्यकार की स्वातंत्र्य-चेतना के कुंठित होने को नाटककार ने आधुनिक संदर्भों में आँका है। वह आधुनिक साहित्यकार की नियति का प्रतीक बन गया है।¹⁷ अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि एक रचनाकार के जीवन में उसकी स्वतंत्रता ही सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। किन्तु जिस प्रकार सुविधा प्राप्त होने पर आज का रचनाकार अपना लेखकीय कर्म भूलकर सुविधाभोगी हो जाता है। उसी प्रकार कालिदास भी राजसत्ता प्राप्त होने पर मल्लिका के प्रेम और त्याग को भूल जाता है। मल्लिका और उसका ग्राम उसकी रचना में सिर्फ एक प्रेरणा स्वरूप रह जाते हैं। असल जिंदगी में कालिदास आत्मकेंद्रित एक ऐसा व्यक्ति, एक ऐसा साहित्यकार है जो अपनी जिंदगी में ही उलझा, एक आधुनिक मानव का प्रतीकात्मक पात्र-चरित्र है। आज के आधुनिक मानव और कालिदास की नियति एक सी है। आज अपने घर में ही लोग कालिदास के समान अनजान महसूस करते हैं। अपनी जड़ से कटकर अपने जीवन मूल्यों को मारकर, अपने असल व्यक्तित्व के ऊपर एक आरोपित व्यक्तित्व को इंसान अधिक दिन नहीं ढो सकता है। सम्पूर्ण नाटक में कालिदास भी अपने व्यक्तित्व के ऊपर एक आवरण-सा ढोता रहता है, जिसका नतीजा यह होता है कि वह अपनी अस्मिता को ही ढूँढता फिरता है और अंततः घर लौट कर आता भी है तो वह अपना घर, यहाँ तक कि खुद को भी बदला महसूस करता है, “और सच कहूँ तो वह व्यक्ति हूँ जिसे मैं स्वयं नहीं पहचानता ! देख रहा हूँ तुम भी वह नहीं हो। सब कुछ बदल गया है।”¹⁸

अतः कालिदास के पात्र-चरित्र के सन्दर्भ में निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि द्वंद्व, अकेलेपन, तनाव, संत्रास, संबंधहीनता और अपनी शून्यता में भटकता, अपने जड़ परिवेश से उखड़ा एक आधुनिक मानव का प्रतीकात्मक चरित्र है।

मल्लिका-

मल्लिका के पात्र-चरित्र का मूल्यांकन करें तो पूरे नाटक में मल्लिका का चरित्र निर्विवाद दिखता है। इस नाटक में मल्लिका एक ऐसी स्त्री पात्र है, जिसमें भारतीय परम्परागत जीवन मूल्यों के प्रति आस्था दिखती है। वह अपने प्रेम में समर्पित एक ऐसी भारतीय नारी है, जिसका जीवन त्याग और समर्पण पर आधारित है। उसके जीवन का एक ही उद्देश्य है, अपने प्रेमी कालिदास को एक महाकवि बनते देखना। जिसके लिए अपनी जिंदगी की सारी खुशियों की तिलांजलि दे देती है। वह कहती है, “मेरी आँखें इसलिए गीली हैं कि तुम मेरी बात नहीं समझ रहे और मैं भी तुमसे दूर नहीं होऊंगी। जब भी तुम्हारे निकट होना चाहूँगी, पर्वत-शिखर पर चली जाऊँगी और उड़कर आते मेघों में घिर जाया करूँगी। हाँ ! देखना मैं तुम्हारे पीछे प्रसन्न रहूँगी और हर संध्या को जगदम्बा के मंदिर में सूर्यास्त देखने जाया करूँगी।”¹⁹ इस प्रकार मल्लिका अपनी सारी खुशियों को त्याग करके भी खुश रहने की बात करती है, साथ ही कालिदास से उसके जाने के पश्चात् पीछे खुश रहने के अन्य उपादानों के बारे में भी बताती है। मल्लिका का जीवन नाटक के हर एक स्थल पर आशावादी दिखता है। जिससे उसके चरित्र में न केवल एक परम्परागत भारतीय स्त्री के जीवन-त्याग और समर्पण का रूप दिखता है, बल्कि साथ ही आधुनिक स्त्री की छवि भी स्पष्ट दिखती है। जीवन में तमाम संघर्षों और कष्टों के बाद भी वह कालिदास की तरह निर्णय लेने में संशय या द्वंद्व में नहीं दिखती है। सर्वप्रथम मल्लिका के व्यक्तित्व में वाक् स्पष्टता नाटक के प्रथम अंक के अंतिम स्थल पर दिख जाती है, जहाँ वह कालिदास को राजकवि पद को स्वीकार करने के लिए कहती है, “मैं जानती हूँ कि तुम्हारे चले जाने से मेरे अन्तर को एक रिक्तता छा लेगी। बाहर भी संभवतः बहुत सूना प्रतीत होगा। फिर भी मैं अपने साथ छल नहीं कर रही। मैं हृदय से कहती हूँ तुम्हें जाना चाहिए।”²⁰ अतः एक ओर मल्लिका में परम्परागत भारतीय नारी की छवि दिखती है तो दूसरी ओर एक आधुनिक नारी की छवि भी उसमें नाटक के दूसरे अंक के उस स्थल पर दिखती है जब मल्लिका को निक्षेप नामक एक ग्राम पुरुष से यह ज्ञात होता है कि कालिदास का विवाह गुप्तवंश की राज-दुहिता प्रियंगुमंजरी से हो गया है। तब

वह कहती है, “तो इसमें बुरा क्या है ? उनके प्रसंग में मेरी बात कहीं नहीं आती । मैं अनेकानेक साधारण व्यक्तियों में से हूँ । वे असाधारण हैं । उन्हें जीवन में असाधारण का ही साथ चाहिए था। सुना है राज-दुहिता बहुत विदुषी हैं ।”²¹ मल्लिका के इन तर्कों से मल्लिका के अन्दर एक आधुनिक स्त्री की छवि भी दिखती है । आज की नारी जिस प्रकार अपने जीवन को आधुनिक दृष्टि से देखती है, उसी प्रकार नाटक के इस अंश में मल्लिका भी देखती है । आज की आधुनिक स्त्रियाँ अपने रिश्तों को अपने व्यक्तित्व पर हावी नहीं होने देती हैं । रिश्ते और अपने व्यक्तित्व दोनों को ही दो दृष्टियों से देखती हैं । रिश्तों के असफल होने पर उस रिश्ते को तोड़ देती हैं और जीवन में नई संभावनाओं को तलाशती हैं । उसी प्रकार कालिदास के जाने पर वर्षों बाद भी कालिदास के घर वापसी न होने पर मल्लिका अपने अतीत को अपने जीवन का सत्य मानकर, अपने जीवन में आगे बढ़ जाती है और विलोम से विवाह कर लेती है । इसके बावजूद कि वह विलोम को पसंद भी नहीं करती है। नाटक में मल्लिका अपने अस्तित्व को स्वतंत्र रखती है, उसकी अपनी जिंदगी अपनी संपत्ति है । इसलिए हर निर्णय में वह असाधारण है और इसीलिए नाटक में मल्लिका का पात्र-चरित्र कालिदास से अधिक प्रभावशाली दिखता है । वह कहीं भी किसी को आलोचना का अधिकार नहीं देती है । वह कालिदास के लिए विलोम और अपनी माँ से नाटक में जगह-जगह पर तर्क करती है, अपनी भावनाओं को हारने नहीं देती है । किन्तु समय के मोड़ को देखते हुए आँखे भी बंद नहीं कर लेती है, तभी वह विलोम जैसे खल पात्र से विवाह कर लेती है । मल्लिका अपने टूटते हुए जीवन को आधार देने के लिए विवाह करती है, किन्तु नाटक के अंत तक उसकी भावनाएँ ही प्रधान रह जाती हैं । गिरीश रस्तोगी इस सन्दर्भ में लिखती हैं, “लेकिन अंत में उसका समर्पित व्यक्तित्व ही प्रधान हो जाता है । अपने वर्तमान से गहरा असंतोष होते हुए भी वह उसमें जीती है । एक ओर उसे लगता है ‘परंतु तुमने वीरांगना का यह रूप भी देखा है ? आज तुम मुझे पहचान सकते हो ? मैंने अपने भाव को, कोष्ठ को रिक्त नहीं होने दिया, परंतु मेरे अभाव की पीड़ा का अनुमान लगा सकते हो ?’ वितृष्णा भी, आत्मग्लानि भी, आत्माभिमान भी, टूटन भी और सारी पीड़ा और असंतोष के पीछे छिपा एक

संतोष भी, तुम रचना करते रहे और मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूँ। मेरे जीवन की भी उपलब्धि है।”²² निष्कर्षतः मल्लिका के पात्र-चरित्र के संबंध में यह कहा जा सकता है कि उसमे भावनाओं का वरन करने वाली एक परंपरागत भारतीय स्त्री-पात्र के गुण भी हैं तो दूसरी ओर अपने भावों और उलझनों में अपने निर्णयों को लेकर स्पष्ट है। मल्लिका के चरित्र को देखकर ऐसा प्रतीत होता जैसे यह मोहन राकेश की काल्पनिक पात्र मात्र न हो, बल्कि उनकी आकांक्षा हो, एक ऐसी आकांक्षा जिसमें एक ऐसी स्त्री चरित्र हो जो एक रचनाकार के लिए प्रेरणा स्रोत हो, रचनाशक्ति हो, रचना विस्तारक हो, कभी भी वह बाधक न हो।

विलोम-

मोहन राकेश के इस नाटक में विलोम एक महत्वपूर्ण पात्र है। इस नाटक में किसी की दृष्टि अधिक व्यावहारिक लगती है तो वह है विलोम की। विलोम संयमित एवं भावनाओं में नहीं बहता तथा व्यावहारिकता में वह एक चतुर पात्र है। विलोम भी आज के आधुनिक मानव का ही एक प्रतीक है जो हर एक अवसर पर अपने हाव-भाव और अपनी वाक् कला से लोगों के बीच अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयत्न करता है,

“विलोम : धिरे हुए मेघों ने आज अंधकार कर दिया है अम्बिका, या तुम्हें समय का ज्ञान ही नहीं रहा? आश्चर्य है, तुमने दीपक नहीं जलाया !

अम्बिका : विलोम! तुम यहाँ क्यों आए हो ?

विलोम : विलोम का आना ऐसे आश्चर्य का विषय नहीं है।

अम्बिका : चले जाओ विलोम ! तुम जानते हो कि तुम्हारा यहाँ आना..

विलोम : मल्लिका को सहन नहीं है। जानता हूँ, अम्बिका ! मल्लिका बहुत भोली है। वह लोक जीवन के संबंध में कुछ नहीं जानती। वह नहीं चाहती कि मैं इस घर में आऊँ, क्योंकि कालिदास

नहीं चाहता। और कालिदास क्यों नहीं चाहता ? क्योंकि मेरी आँखों में उसे अपने हृदय का सत्य झाँकता दिखायी देता है। उसे उलझन होती है।... किन्तु तुम तो जानती हो अम्बिका, मेरा एकमात्र दोष यह है कि मैं जो अनुभव करता हूँ, स्पष्ट कह देता हूँ।”²³ इस प्रकार विलोम के चरित्र में हमें आज का वह मनुष्य दिखता है, जो दूसरों की जिंदगी में प्रवेश कर अपनी मौजूदगी सही साबित करने का पूर्ण प्रयत्न करता है। नाटक में कई स्थलों पर वह कालिदास से टकराता है। कालिदास द्वंद्वों से घिरा अन्तर्मुखी है। जबकि विलोम समय की नब्ज को पहचानता है, वह हर एक परिस्थिति में अपने अस्तित्व को बनाए रखने में सक्षम है। साथ ही अपने आप को हर एक मौके पर सही साबित करने का प्रयत्न करता है। नाटक में जब भी कालिदास, मल्लिका या अम्बिका भावनाओं और द्वंद्वों की चरम सीमा पर होते हैं, तब-तब विलोम आकर उन्हें और भी परेशान कर देता है और अपने व्यक्तित्व का एहसास करवाता है। आज भी कई लोगों की यही दृष्टि है। दूसरों को परेशान देखकर उन्हें और भी उलझाते हैं, “विलोम: देख रहा हूँ इस समय तुम बहुत दुखी हो। और तुम दुखी कब नहीं रहीं, अम्बिका ? तुम्हारा तो जीवन ही पीड़ा का इतिहास है। पहले से कहीं दुबली हो गयी हो ? सुना है कालिदास उज्जयिनी जा रहा है। कालिदास उज्जयिनी चला जाएगा ! और मल्लिका, जिसका नाम उसके कारण सारे प्रांत में अपवाद का विषय बना है, पीछे यहाँ पड़ी रहेगी ? क्यों, अम्बिका ?

अम्बिका: तुम यह सब कहकर मेरा दुःख कम नहीं कर रहे, विलोम ! मैं अनुरोध करता हूँ कि तुम इस समय मुझे अकेला रहने दो।”²⁴ इस प्रकार विलोम भी आज के उन लोगों का द्योतक है जो दूसरों को सताने के लिए उनकी जिंदगी में बिन बुलाए ही आ जाते हैं। विलोम अपने व्यक्तित्व को यूँ तो नाटक में हर एक जगह सही साबित करने का प्रयत्न करता है, किन्तु अन्दर से वह भी कम टूटा हुआ और दुखी नहीं है। लेकिन उसका वजूद ऐसा है जो हर बार अपने पराजय को जीत में बदल देता है। इस सन्दर्भ में गिरीश रस्तोगी लिखती हैं, “नाटक के प्रथम अंक में ही राकेश ने विलोम से कहलवाया है, विलोम क्या है ? एक असफल कालिदास। और कालिदास ? एक सफल विलोम। हम एक-दूसरे के बहुत निकट पड़ते हैं। नतीजा यह है कि बहुतों को विलोम सामान्य खलनायक

जैसा लगता है, जबकि न कालिदास आम नायक है न विलोम । इस रूप में देखने में विलोम कालिदास के व्यक्तित्व का ही एक अंश है- देखने की बात है कि जो कालिदास पाना चाहता है वह विलोम को मिलता है और जो विलोम प्राप्त नहीं कर पाया वह कालिदास प्राप्त करता है इसलिए विलोम जैसे पात्र की गठन की सार्थकता कालिदास के द्वंद्व और व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने में है न कि खलनायक बनाने में ।”²⁵

नाटककार की सूक्ष्म दृष्टि और सांकेतिकता ही इस नाटक को हिंदी के सर्वश्रेष्ठ नाटकों की श्रेणी में पंक्तिबद्ध करती है । अतः विलोम का चरित्र इस नाटक में अधिक सशक्त और प्रभावशाली और सफल दिखता है । विलोम और कालिदास दोनों ही मानवीय दुर्बलताएँ हैं । इस दृष्टि से तमाम मानवीय दुर्बलताओं के साथ कालिदास को एक नायक के रूप में यदि मोहन राकेश ने चित्रित किया है तो यकीनन परंपरागत नायक की छवि को तोड़ा है और आगे नए लेखकों के सामने नायक के प्रति एक नई दृष्टि दी है । विलोम जैसे चरित्र की संरचना करके आधुनिक व्यावहारिक मनुष्य को प्रतीक रूप में ही चित्रित किया है ।

अम्बिका-

नाटक में मुख्य पात्र के अतिरिक्त कई ऐसे सहायक पात्र होते हैं जो नाटक की कथा के विकास में सहायक होते हैं । अम्बिका भी इस नाटक में ऐसी ही पात्र है । इस नाटक में सहायक पात्रों की यह विशेषता है कि वह न सिर्फ कथा को आगे बढ़ाने में सफल हैं, बल्कि इस नाट्य-कथा में अपनी विशेष भूमिका निभाते हैं । इस नाटक के सभी पात्र आज के आधुनिक युग में किसी न किसी मानवीय चरित्र के प्रतीकात्मक पात्र को चरितार्थ करते हैं । अम्बिका मल्लिका की माँ है जो अपने जीवन में व्यावहारिक है । नाटक में मोहन राकेश ने अम्बिका के माध्यम से ही आज की भौतिकवादी दुनिया में व्यावहारिक यथार्थवादी जीवन दृष्टि को प्रस्तुत किया है । नाटक में अम्बिका और मल्लिका के

इस संवाद से अम्बिका के चरित्र को समझा जा सकता है, “अम्बिका : और मुझे ऐसी भावना से वितृष्णा होती है। पवित्र, कोमल, और अनश्वर हँ !

मल्लिका : माँ, तुम मुझ पर विश्वास क्यों नहीं करती ?

अम्बिका : तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्म-प्रवंचना है। भावना में भावना का वरन किया है ! मैं पूछती हूँ भावना में भावना का वरन क्या होता है ? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती हैं ? भावना में भावना का वरन हँ !”²⁶ अम्बिका का यह जीवन और भावना के प्रति दृष्टिकोण आज के उन आधुनिक यांत्रिक मनुष्यों के समीप लेकर आता है जो हृदय से नहीं सिर्फ दिमाग से व्यावहारिक बातें सोचते हैं या उनमें भरोसा रखते हैं। अम्बिका जीवन में भावनाओं को बहुत अधिक स्थान नहीं देती है। वह मानती है कि जीवन की भौतिक जरूरतें भावनाओं से पूरी नहीं की जा सकती हैं। किन्तु मल्लिका की इन भावनाओं के प्रति अम्बिका वात्सल्य सहानुभूति भी रखती है। जब भी मल्लिका को दुखी, निराश देखती है तो उसे अपने प्रेम और मातृत्व से दुलारती भी है। अम्बिका के मातृत्व की झलक नाटक में कई स्थानों पर दिख जाती है। मल्लिका, अम्बिका और विलोम के बीच जब दूसरे अंक के अंतिम स्थल पर कालिदास के आने न आने पर तर्क-वितर्क होता रहता है और विलोम काफी कटु बातें कहकर चला जाता है तब मल्लिका टूट जाती है और रोने लगती है और अम्बिका उसे अपने मातृत्व स्नेह से संभालती है। नाटककार ने दृश्य निर्देशन में लिखा है, “मल्लिका रुक जाती है। पर कुछ भी उत्तर न देकर मुँह हाथों से छिपा लेती है। अम्बिका उठकर धीरे-धीरे उसके पास आ जाती है और उसे बाँहों में ले लेती है। सारा शरीर रुलाई से काँपता रहता है, पर गले से स्वर नहीं निकलता। अम्बिका की आँखें भर आती हैं और वह उसके कांपते शरीर को अपने से सटाए उसकी पीठ पर हाथ फेरती रहती है। फिर होठों और गालों से उसके सर को दुलारने लगती है।”²⁷ इस प्रकार अम्बिका जितनी अपने जीवन में कठोर और व्यावहारिक दिखती है उतनी ही उसके अन्दर मातृत्व भाव भी है। वह आधुनिक स्त्री की भांति जीवन के कटु सत्य को जानती है कि जीवन की मूलभूत आवश्यकता भावनाओं से पूरी नहीं की जा

सकती है। इसीलिए वह कई बार मल्लिका के भावनात्मक जीवन मूल्य को नकारती है। किन्तु दूसरी ओर अपनी पुत्री मल्लिका के दुःख में हर पल साथ देती है, उसे अपना प्रेम देती है, उसे संभालने की कोशिश करती है। अतः इस नाटक में अम्बिका का पात्र भी नाट्य कथा के बिल्कुल अनुरूप गठित है। सिर्फ कथा को आगे बढ़ाने मात्र के लिए नहीं है बल्कि एक पूरक के समान नाटक में है। अतः अम्बिका के पात्र का इस नाटक में अपना ही प्रभाव और महत्त्व है।

मातुल-

‘आषाढ़ का एक दिन’ में आधुनिकता और भी कई चरित्रों में दिखती है। मातुल भी एक ऐसा ही पात्र है जो आज के आधुनिक मनुष्य की अवसरवादी प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। सत्ताधारियों की चाटुकारिता उसके चरित्र की विशेषता है और अवसर मिलने पर अपना रंग बदल लेना उसके चरित्र की खास विशेषता है। जीवन में भौतिक सुख ही उसके जीवन का मूल तत्व है, तभी उसके लिए रिशतों से बढ़कर कालिदास का राजपद अधिक महत्त्व रखता है। सर्वप्रथम कालिदास के राजपद नहीं स्वीकार करने पर वह क्रोधित हो जाता है और अम्बिका और मल्लिका से जाकर कहता है,

“मातुल : मैंने इसे पाला-पोसा, बड़ा किया। क्या इसी दिन के लिए कि यह इस तरह कुलद्रोही बने?

अम्बिका : तुम अपने भागिनेय की बात कर रहे थे।

मातुल : उसी की बात कर रहा हूँ, अम्बिका ! तुम समझो कि एक तरह से राज्य की ओर से हमारे वंश का सम्मान किया जा रहा है और वे वंशावतंस कहते हैं, ‘मुझे ये सम्मान नहीं चाहिए’²⁸ इस प्रकार मातुल का अपने भागिनेय कालिदास की भावनाओं से कोई वास्ता नहीं है, वास्ता है तो उसे मिलने वाले राजपद से, जिससे उसके कुल का नाम हो और उसे अप्रत्यक्ष रूप से भौतिक लाभ हो। मातुल कवि और कविता को महत्त्व नहीं देता है। उसके लिए कवि-कर्म से महत्त्वपूर्ण, राजपद है, भौतिक लाभ है, “मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें क्रय-विक्रय की क्या बात है। सम्मान मिलता है, ग्रहण करो। नहीं, तो कविता का मूल्य ही क्या है ?”²⁹ कालिदास के इस भावनात्मक काव्य

जीवन से मातुल को वितृष्णा है। उसे सिर्फ नजर आता है तो गुप्तवंश के साथ उसका संबंध। आज का मनुष्य भी अपने रिश्तों को सिर्फ लाभ और हानि के तराजू में तौल कर देखता है। जो रिश्तों में एक अपनापन हमारे परंपरागत जीवन में देखा जाता रहा है वह संभवतः लुप्त होता जा रहा है। आज अर्थ के आधार पर रिश्ते तय होते हैं। मातुल आज उसी संकीर्ण जीवन दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता हुआ नाट्य पात्र है। बाह्य जीवन और अवसरवादी जीवन दृष्टि आज के मानव का सत्य बन चुका है। लेकिन अंततः मातुल भी अपने इस दिखावे और खोखले जीवन से ऊब जाता है, जिसकी झलक हमें नाटक के आखिरी अंक में दिखती है। इस सन्दर्भ में गिरीश रस्तोगी का मत है, “राकेश इस भौतिक दृष्टि के बहुत समर्थक नहीं हैं। अंतिम अंक में मातुल के संवादों में कृत्रिम जीवन से वितृष्णा और ऊपरी चमक से भरे जीवन का खोखलापन ही दिखाया गया है- आंतरिकता और आत्मीयता का, अपनी मिट्टी की सोंधी गंध का अभाव ही जैसे उसे तोड़ देता है। मातुल के यहाँ के संवादों में सभ्यता, शिष्टता में छिपी बनावट को ही खोला गया है। भौतिक और अवसरवादी दृष्टि जो कुछ समझ पाती है वह सदा झूठ होता है। यानी सत्य सदा उसके विपरीत होता है। अवसरवादिता और बाह्य जीवन का आकर्षण आज के मनुष्य की मनोवृत्ति है।”³⁰

अतः यह कहा जा सकता है कि मातुल आज के आधुनिक मानव के उस मनोवृत्ति का प्रतिनिधि पात्र है जो आज अवसरवादिता और भौतिक सुखों को ही जीवन का सर्वोपरि सत्य मानता है। जिसके लिए वह जीवनभर अपने ऊपर अलग-अलग व्यक्तित्व को धारण करता रहता है। किन्तु अंततः इन बाह्य जीवन से ऊब कर अपने वास्तविक जीवन को जीना चाहता है।

दंतुल, प्रियंगुमंजरी, अनुस्वार, अनुनासिक, रंगिणी और संगिणी-

नाटक के अन्य पात्रों में दंतुल है जो सत्ताधारियों का प्रतिनिधित्व करता है, जिसकी भाषा में संयमता नहीं है। कठोर हृदय, हिंसक और अहंकार से भरा हुआ। ऐसे पात्र तब भी सत्ता में दिख जाते थे और आज भी होते हैं। जो सत्ता के मद में अहंकारी होते हैं और आमजन को सत्ता का भय दिखाकर उनसे

उनकी वस्तु भी छीन लेना चाहते हैं। नाटक के प्रारंभ में ही दंतुल और कालिदास की हरिणशावक को लेकर झड़प होती है, जिसमें दंतुल के व्यक्तित्व की झलक हमें दिख जाती है, “दंतुल: तो क्या मेरे ललाट की रेखाओं को देखकर ? जान पड़ता है चोरी के अतिरिक्त सामुद्रिक का भी अभ्यास करते हो।

कालिदास : इस प्रदेश में हरिणों का आखेट नहीं होता राजपुरुष ! तुम बाहर से आए हो, इसीलिए इतना ही पर्याप्त है कि हम इसके लिए तुम्हें अपराधी न मानें।

दंतुल : तो राजपुरुष के अपराध का निर्णय ग्रामवासी करेंगे! ग्रामीण युवक, अपराध और न्याय का शब्दार्थ भी जानते हो !

कालिदास: शब्द और अर्थ राजपुरुषों की संपत्ति है, जानकार आश्चर्य हुआ।

दंतुल : राजपुरुषों के अधिकार बहुत दूर तक जाते हैं। मुझे देर हो रही है। यह हरिणशावक मुझे दे दो।”³¹ अतः दंतुल की भाषा से दंतुल के मद और उसके अहंकार का पता चलता है। जो कि सत्ताधारियों के पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है।

प्रियंगुमंजरी भी सत्तापक्ष की प्रतिनिधि पात्र है, जिसके व्यक्तित्व में विनम्रता, कुशलता, संस्कार, और शिष्टता दिखती है। कालिदास की राजमहिषी के रूप में मल्लिका के आगे ईर्ष्या, घबराहट और हीनता का भाव भी आता है। प्रियंगु कालिदास की पत्नी बनकर भी कालिदास की जिंदगी में मल्लिका की जगह नहीं ले पाती है। इसलिए मल्लिका को लेकर अपने अन्दर की ईर्ष्या, घबराहट, भाव को कई जगहों पर अपने झूठे दर्प में छिपा लेती है। आधुनिक समाज के उच्चवर्गों की स्त्रियों में इस तरह का व्यक्तित्व आज देखने को मिल जाता है। जो अपनी ही जिंदगी के वैभव के मद में खोई रहती हैं। जिंदगी में अपनी दौलत और शोहरत की नुमाइश करती रहती हैं। किन्तु जिंदगी की असल खुशी से अक्सर मेहरूम रहती हैं और जब कभी असल जिंदगी से सामना होता है तो वह घबरा जाती हैं और अपने झूठे दिखावे की जिंदगी से उसे छोटा साबित करने का प्रयत्न करती हैं, “अंत में ग्रामीण

सादगी और अनन्यता के आगे पराजित होकर एक खिसियाहट के साथ अपने झूठे महत्त्व को बनाए रखते हुए चली जाती है। सत्ताधारियों की अल्पज्ञता और स्थूल दृष्टि का संकेत भी प्रियंगु के माध्यम से दिया गया है।³²

इस नाटक में अन्य पात्रों में रंगिणी, संगिणी, अनुस्वार और अनुनासिक भी आधुनिक प्रतीकात्मक पात्र हैं। ये सभी पात्र भी सत्ता पक्ष से जुड़े हुए हैं। इनकी कल्पना शक्ति साधारण जीवन रूपों को समझने में अक्षम है। वे दुनिया को अपनी ही नज़र से देखते हैं। नाटक में रंगिणी और संगिणी इसी तरह की पात्र हैं। जब दोनों कालिदास के गाँव आती हैं तो कालिदास के गाँव को अपनी कल्पना से बिल्कुल भिन्न पाती हैं। वह मल्लिका से कहती है, “संगिणी : यह मैं नहीं मान सकती। इस प्रदेश ने कालिदास जैसी असाधारण प्रतिभा को जन्म दिया है। यहाँ की तो प्रत्येक वस्तु असाधारण होनी चाहिए।”³³ इस प्रकार रंगिणी, संगिणी का वास्तविक दुनिया के प्रति अल्प ज्ञान उसकी अज्ञानता को दर्शाता है, साथ ही ग्राम के छोटी-छोटी वस्तुओं को लेकर उनका अति-उत्साह उनकी कृत्रिमता को दर्शाता है। शोध के सन्दर्भ में प्रतीत होता है जैसे वह जीवन के बाह्य तत्त्वों को ही एकत्रित कर रही है, न कि जीवन के उन मूल रहस्यों को जो कालिदास के जीवन की प्रेरणा थी। अतः रंगिणी, संगिणी नाटक में उस आधुनिक चरित्र का प्रतिनिधित्व कर रही है, जो सत्ता सम्पन्न वर्ग से है। जिनको वास्तविक जीवन और दुनिया का ज्ञान ही नहीं है।

अनुस्वार और अनुनासिक भी नाटक के सफल पात्र-चरित्र हैं। नाटक में इनके आने से रस परिवर्तन होता है और नाटक मनोरंजनपरक बनता है साथ ही नाटक में बोझिलता भी नहीं आती है। इसके अतिरिक्त ये सत्ता पक्ष के ऐसे चरित्र हैं जो निरर्थक औचित्य-अनौचित्य के विवाद में उलझे रहते हैं और किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते हैं। एक तरह से अनुस्वार और अनुनासिक सत्ता में पलने वाले एक ऐसे पात्र हैं जो दिमागी दिवालियेपन के प्रतीकात्मक चरित्र हैं, “दोनों कर्मचारी एक वर्ग विशेष के संदिग्ध, असंदिग्ध, औचित्य, अनौचित्य के विवाद में उलझे मत वैभिन्न्य से उपजे दिमागी दिवालियेपन के द्योतक हैं। चलते-फिरते ढंग से इनके छोटे-छोटे वाक्यों में बड़ी गंभीर बातें कह दी

गयीं और यह राकेश की 'अनुभूति' और 'अभिव्यक्ति' के अनुशासन का बड़ा अच्छा उदाहरण है, अर्थ सन्दर्भ की दृष्टि से भी और नाटकीय परिकल्पना की दृष्टि से भी। इस नाटक की सारी पात्र योजना देखकर एक यह सत्य भी सामने आता है कि पहली बार हिंदी नाटक में किसी नाटककार ने छोटे-छोटे पात्रों को भी उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व दिया है, उनकी उपस्थिति को नाटक में अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण बना दिया है।”³⁴

इस प्रकार चरित्र सृष्टि के सन्दर्भ में 'आषाढ़ का एक दिन' सम-विषम तत्वों के जोड़ से निर्मित एक उत्कृष्ट नाटक है। इन पात्रों में सिर्फ परस्पर संघर्ष है, ये नहीं कहा जा सकता है। ये सभी पात्र एक दूसरे के पूरक भी हैं और एक-दूसरे से अलग भी हैं। तभी यह आज के मनुष्य के अंतर्विरोधों पर आधारित एक आधुनिक नाटक है। किन्तु तमाम अंतर्विरोधों के पश्चात् भी वे आपस में जुड़े हुए हैं। जैसे मल्लिका और अम्बिका, कालिदास और विलोम, कालिदास और मातुल एक दृष्टि से ये सभी एक-दूसरे के विपरीत चरित्र वाले लगते हैं, लेकिन कहीं न कहीं इनके बीच समीकरण दिखता है। जैसे कालिदास का एक सकारात्मक चरित्र है। वहीं विलोम के चरित्र में नकारात्मक रूप दिखता है। एक अपनी जिंदगी में भावुक है। दूसरा यथार्थवादी और व्यावहारिक, जो जिंदगी में भावना को बहुत महत्त्व नहीं देता है। एक द्वंद्वों में घिरा है तो दूसरा द्वंद्वों को पचाए हुए है। विलोम के चरित्र में खलनायक तब उभरकर आता है जब वह कालिदास के अन्दर की खलवृत्ति को उभारता है, "राकेश ने ठीक ही कहा है कि आषाढ़ का एक दिन' में पराजित टूटा हुआ कालिदास नहीं, अपने में संयोजित विलोम है।”³⁵ अन्य पात्र मात्र दंतुल, मातुल, रंगिणी, संगिणी जैसे पात्र भी नाटक की कथावस्तु के अनुरूप ही गठित किये गए हैं और नाटक में कहीं भी ये पात्र सिर्फ कथा को आगे बढ़ाने में सहायक ही नहीं हैं, बल्कि एक कड़ी के रूप में हैं जो कथा से जुड़े हुए हैं। इन पात्रों की भूमिका भी अपने स्थान पर सार्थक है। अतः मोहन राकेश कृत 'आषाढ़ का एक दिन' एक ऐसा आधुनिक नाटक है जिसमें आधुनिक मानव को अपने परम्परागत जीवन मूल्यों से कट कर द्वंद्वों में घिरा एवं भटकता

दिखाया गया है। आज के आधुनिक मनुष्य की सुविधाभोगी और व्यावहारिक मनोवृत्ति को विभिन्न प्रतीकात्मक चरित्रों के माध्यम से चित्रित किया गया है।

3.2 लहरों के राजहंस

मोहन राकेश की दूसरी नाट्य-रचना है 'लहरों के राजहंस'। जिसका प्रकाशन 1963 ई. में हुआ था। 'लहरों के राजहंस' नाट्य-कृति की रचना-प्रक्रिया और उसे एक अंतिम रूप देने में राकेश को एक लम्बा अरसा लग गया। इस नाटक की भूमिका तो बहुत पहले बन चुकी थी, पर हर बार राकेश को नाट्य कृति में कुछ अधूरा सा लगता था। अंतिम स्थाई रूप प्राप्त करने से पूर्व इस नाटक को कई सोपानों से गुजरना पड़ा है। सर्वप्रथम इस नाटक के बीज दर्शन 1946-47 ई. में लिखित एक कहानी 'अनाम ऐतिहासिक कहानी' में होता है। मोहन राकेश इससे संतुष्ट नहीं थे, अतः राकेश ने इसकी रूप रेखा में परिवर्तन कर इसे एक ध्वनि रेडियो नाटक के रूप में तैयार किया, जिसका नाम दिया 'सुंदरी' और इसका प्रसारण बम्बई रेडियो स्टेशन से हुआ। इस नाटक में राकेश को अभी भी कुछ कमी लग रही थी। इसके पश्चात् मित्रों के कहने पर फिर से 1956-57 ई. में कुछ संशोधन और परिवर्तन कर इसे एक रंग नाटक या एकांकी का रूप दिया, जिसका नाम दिया 'रात बीतने तक'। इसे भी प्रसारित किया गया पर विशेष सफलता नहीं मिली। उन दिनों मोहन राकेश लगातार इस नाटक को लेकर चिंतन-मनन करते रहे फिर उसी दौरान 1958 में इनका प्रथम उत्कृष्ट नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' भी प्रकाशित हो गया। जिससे राकेश को 60 के दशक में एक नाटककार के रूप में विशेष पहचान मिली। इसके चार-पांच वर्ष बाद सन् 1963 में राकेश नन्द और सुंदरी के जीवन पर आधारित इस नाट्य-कृति को अंतिम रूप देने में सफल हुए जिसका नाम उन्होंने दिया 'लहरों के राजहंस'। इस प्रकार इस नाट्य-कृति को एक अंतिम स्थाई रूप देने में मोहन राकेश को 15 वर्ष से भी अधिक समय लग गए। अतः एक उत्कृष्ट रचना के पीछे कई बार, कितना समय और कितनी मेहनत लगती है, उसका अनुमान मोहन राकेश के इस नाटक से लगाया जा सकता है।

‘लहरों के राजहंस’ का कथानक मूलतः महाकवि अश्वघोष के ‘सौन्दरानन्द’ पर आधारित है। नाट्य कथानक के केंद्र में गौतम बुद्ध के छोटे भाई नन्द और उनकी पत्नी सुंदरी है। नाटक के परिवेश की बात की जाए तो उसे उतना महत्त्व नहीं दिया गया है, जितना कि नाटक से व्यंजित आधुनिक मानव मन की जटिलताओं और अंतर्द्वंदों को। मोहन राकेश का यह नाटक भी ऐतिहासिक कथा और चरित्रों के माध्यम से आज के आधुनिक मानव के अंतरद्वंद्व, पार्थिव, अपार्थिव जीवन मूल्यों तथा अस्तित्व संकट को प्रकट करता है। मोहन राकेश के नाटकों की यह विशेषता है कि वे अपने नाटकों के माध्यम से बाह्य समसामयिक समस्याओं का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयत्न नहीं करते हैं। अपने नाटकों के माध्यम से आधुनिक मानव के उलझते-टूटते रिश्ते और मानव मन की आंतरिक द्वंद्वात्मक पीड़ा आदि को सामने रखना उनका नाट्य उद्देश्य है। मोहन राकेश को जैसा कि हम जानते हैं अपनी परंपरा का बोध बहुत अधिक था, तभी वे अपने पहले के नाटक में और इस नाटक में भी परम्परागत जीवन मूल्यों को महत्त्व देते दिखते हैं। ‘आषाढ़ का एक दिन’ में भी एक तरफ कालिदास अपने परंपरागत जीवन मूल्यों से कटकर द्वंद्वों से घिर जाता है। जिन बाह्य जीवन उपलब्धियों के लिए वह सब कुछ छोड़कर चला जाता है उसी ज़मीन, जड़ और जीवन मूल्यों की तलाश में वापस आता है। ठीक उसी प्रकार इस नाटक में नन्द अंतर्द्वंद्व में उलझा आज का प्रतीकात्मक चरित्र है। नन्द का अंतर्द्वंद्व बुद्ध के दिखाए गए मार्ग और भोगवादी जीवन-दृष्टि के बीच का है। दूसरी ओर सुंदरी जो बाह्य जीवन के आकर्षण और सुखों को जीवन का सत्यमान कर जीने वाली प्रतीकात्मक पात्र-चरित्र है, “नन्द और सुंदरी ऐतिहासिक पात्र होते हुए भी आज के सन्दर्भ में नितांत आधुनिक हैं क्योंकि उनके द्वारा आज के मानव की बेचैनी, विवशता और आंतरिक संघर्ष को प्रेषित किया गया है। स्वयं राकेश कहते हैं कि नन्द और सुंदरी की कथा एक आश्रय मात्र है, क्योंकि मुझे लगा कि इसे समय में परिक्षेपित किया जा सकता है। नाटक का मूल अंतर्द्वंद्व उस अर्थ में यहाँ भी आधुनिक है जिस अर्थ में ‘आषाढ़ का एक दिन’ के अंतर्गत है।”³⁶ इस नाटक में भी नाटककार ने ऐतिहासिक

पात्रों को युगीन बना दिया है, साथ ही इनका चित्रांकन भी बड़ी गहराई और एकाग्रता से करते हुए इन ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से आधुनिक अर्थ को व्यंजित किया है।

तीन अंको का यह नाटक कपिलवस्तु के राजकुमार नन्द के बौद्ध भिक्षु बनने और न बनने के द्वंद्व और नन्द की पत्नी सुंदरी के रूप-यौवन और उसके आकर्षण के दर्प की नाट्य-कथा है। इस कथानक में द्वंद्व दो स्तरों पर है। जिसके केंद्र में नन्द और सुंदरी हैं और सुंदरी को अपने रूप-सौंदर्य पर अत्यंत गर्व है। उसके अन्दर एक आत्माभिमान है कि उसका सौंदर्य आकर्षण नन्द को हमेशा ही उसके साथ बाँधकर रखेगा। यशोधरा की तरह नहीं जो बुद्ध को अपने रूप आकर्षण में बाँधकर रख भी नहीं सकी। वह इस सन्दर्भ में कहती है, “सुंदरी : राजकुमार सिद्धार्थ आज गौतम बुद्ध बनकर आए हैं, इसका श्रेय भी तो देवी यशोधरा को है।

अलका : देवी यशोधरा को है ?

सुंदरी : नहीं ! देवी यशोधरा का आकर्षण यदि राजकुमार सिद्धार्थ को बाँध सकता, तो क्या आज भी वे राजकुमार सिद्धार्थ ही न होते ? नारी का आकर्षण पुरुष को पुरुष बनाता है, तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।”³⁷ सुंदरी को अपने रूप आकर्षण पर दृढ़ विश्वास है कि नन्द सदा ही उसके रूप पाश में बंधे रहेंगे और अपने भाई के समान बौद्ध भिक्षु नहीं बनेंगे। आज के समकालीन समय में भी मानव अपने शरीर की सुंदरता और आकर्षण को बनाए रखने के लिए न जाने कौन-कौन से प्रसाधन इस्तेमाल करता है। किन्तु अपनी अंतरात्मा को दूसरों के लिए द्वेष और नफरतों से भरे रहता है। आत्मा की शुद्धता पर केन्द्रित आज बहुत कम मनुष्यों का ही व्यक्तित्व होगा। सुंदरी अपनी इस भौतिकवादी जीवन दृष्टि को ही साबित करने और उसके अस्तित्व को बनाए रखने के लिए कामोत्सव का आयोजन करती है। इस कामोत्सव के आयोजन से वह अपने स्वाभिमान और विश्वास को जिंदा रखना चाहती है। यह स्वाभिमान उसके आचरण के साथ-साथ उसके संवादों में भी देखा जा सकता है, “स्वाभिमान उसके हाव-भाव, गतियों में ही नहीं उसके कथनों में भी है। वह सोच ही

नहीं पाती कि 'भरा पूरा यौवन और हृदय में धूल भरा आकाश' इनमें मेल ही क्या है ? और यह कामना किसी के मन में जागती ही क्यों है ? राजहंसों के जोड़ों की किलोल के आगे उसे गौतम बुद्ध का निर्वाण और अमरत्व सारहीन, निरर्थक लगता है लेकिन उसका विश्वास कुछ टूटता है यह जानकर कि बहुत से अतिथि कामोत्सव में नहीं आयेंगे।”³⁸ सुंदरी इसके पश्चात् भी अपनी इस उत्सव कामना में कहीं भी कमी नहीं आने देना चाहती है। वह मैत्रेय से कहती है कि मैं अपनी कामना को कल के लिए क्यों टालूँ। रूप-गर्विता सुंदरी के लिए यह कामना के इस महोत्सव का अर्थ सिर्फ बाहरी नहीं था, बल्कि यह उसके अन्दर की कामना की पूर्ति का एक साधन है। उसके अन्दर गर्व, विश्वास के पीछे छिपा द्वंद्व और पीड़ा है जिसे वह बाहर नहीं आने देना चाहती है, परंतु उसके अन्दर की यह पीड़ा और द्वंद्व बढ़ता ही जाता है। सुंदरी कहती भी है, “सुंदरी : मैं अव्यवस्थित नहीं हूँ। किसी का कोई भी षडयंत्र मुझे अव्यवस्थित नहीं कर सकता। अपने उद्वेग का वास्तविक कारण मैं स्वयं हूँ और किसी को मैं अधिकार नहीं देती कि वह मेरे उद्वेग का कारण बन सके।”³⁹ इस प्रकार नाटक के प्रथम अंक में रूप-गर्विता सुंदरी का व्यक्तित्व ही उभरकर सामने आता है। दूसरी ओर इस अंक में नन्द का व्यक्तित्व एक साधारण पुरुष की तरह ही उभरकर सामने आता है, जो संयमित, संतुलित और अपनी पत्नी की खुशी के प्रति निष्ठावान है।

दूसरे अंक में मोहन राकेश ने नन्द के व्यक्तित्व और उसके संघर्ष को ही पूर्णतः उभारा है। पूरा अंक एक नाटकीय वातावरण से निर्मित है, जिसमें चारित्रिक संघर्ष और तनाव है। दूसरे अंक का प्रारंभ ही नेपथ्य से श्यामांग के स्वर से होता है। जिसे सुनकर नन्द विचलित-सा हो जाता है और उसे लगता है कि मानो श्यामांग का प्रलाप उसके अन्दर की आवाज हो,

श्यामांग : “कहाँ हूँ मैं ? क्यों हूँ मैं यहाँ ? मेरा स्वर, पानी की लहरों का स्वर, सब-कुछ एक आवर्त में घूम रहा है। एक चील.. एक चील सब कुछ झपटकर लिए जा रही है। इसे रोको। इसे रोको।

नन्द : आधी रात से अब तक यह स्वर नहीं रुका । सोचता था यह रुके, तो कुछ देर सोने का प्रयत्न करूँ। परंतु यह स्वर जैसे रात पर ही नहीं, मेरी चेतना पर भी पहरा दे रहा है । यह मुझे सोने नहीं देता।”⁴⁰ नन्द के अन्दर के इस प्रश्न ‘मैं कहाँ हूँ’ ? का उत्तर उसे नाटक के तीसरे अंक में मिलता है, जहाँ भिक्षु आनंद उसे बताता है कि तुम्हारे पास कक्ष उद्यान तो है किन्तु घर नहीं है, जहाँ तुम्हारी आत्मा विश्राम कर सके, “भिक्षु आनंद : मैं घर देखना चाहता था, नन्द...घर..कक्ष या उद्यान नहीं । तुम्हारे पास कक्ष और उद्यान सब कुछ है, घर नहीं है ... घर जिसमें तुम्हारी आत्मा को विश्राम मिल सके ।”⁴¹ नन्द के जीवन की यह परिस्थिति आज के मानव की परिस्थिति भी है । जिस प्रकार नन्द अपने वास्तविक जीवन को न जीकर दूसरे के आदर्श को जीता रहता है । जिससे वह सुंदरी के आगे तो खुद को प्रसन्न दिखाता है, किन्तु अन्दर से उसकी अंतरात्मा उतनी ही उद्द्वेलित है । ठीक उसी प्रकार आज का मानव भी अपनी जिंदगी न जीकर दूसरे की आरोपित जिंदगी जीता रहता है और अंततः अन्दर से अशांत और व्याकुल रहता है । नन्द अपने केश कटवाने से पूर्व यह प्रयत्न भी करता है कि वह सुंदरी के जीवन आदर्श को ही जिए । किन्तु द्वार पर भिक्षा मांगने आए गौतम बुद्ध का स्वर सुनकर सुंदरी के मोहपाश में बंधे नन्द की चेतना मानो खंडित हो जाती है । नाट्य-कथा में भी दिखाया गया है कि पहले तो दर्पण नन्द की सांसो की तेज गति से धुंधला जाता है और फिर हाथ से दर्पण छूटकर टूट जाता है, “नन्द के हाथ से दर्पण के गिर जाने तथा टूट जाने का नाट्य व्यापार बहुत सार्थक तथा गहरा अर्थ देने वाला है । ‘दर्पण’ यहाँ नन्द की मानसिकता को व्यक्त करने वाला एक दूसरा रंग-प्रतीक बन जाता है । इस विभाजित मानसिकता के कारण ही नन्द सुंदरी की रूप माधुरी में पूरी तरह तल्लीन नहीं हो पाता और गौतम बुद्ध के पास जाकर क्षमा मांगने की बात सोचता है । अपनी इस मानसिकता के संबंध में नन्द का यह स्वगत कथन है, ‘कुछ है जो चेतना पर कुंडली मारे बैठा रहता है और मुझे अपने से मुक्त नहीं होने देता । मैं उससे मुक्त होना चाहता हूँ, परंतु क्या सचमुच मुक्त होना चाहता हूँ, क्या चाहता हूँ ? यह क्यों कभी मन में स्पष्ट नहीं हो पाता ?”⁴² इस प्रकार द्वंद्व में उलझा हुआ नन्द का विभाजित मन ही दूसरे अंक में देखने को मिलता है । आधुनिक मनुष्य का मन

भी आज विभाजित है। आज मनुष्य यांत्रिक जीवन और उसके चकाचौंध के पीछे की अंधेरी जिंदगी को जानता है। कौन-से जीवन का मार्ग उसके लिए सही है, कौन-सा गलत, यह जानते हुए भी वह तय नहीं कर पाता है। वह उसी जगमगाते क्षणिक जीवन सुख के पीछे बेतहासा भागता रहता है। खंडित व्यक्तित्व और द्वंद्वों में ही खुद को घिरा पाता है। नन्द आज के उस खंडित व्यक्तित्व का प्रतीकात्मक स्वरूप है जिसका मन आज विभाजित है, खंडित है और द्वंद्वों से घिरा है।

नाटक के तीसरे अंक में नन्द क्षत-विक्षत केश कटाकर लौटता है। नन्द का यह रूप देखकर सुंदरी का अपने रूप आकर्षण में बांधे रखने का प्रयत्न और विश्वास खंडित हो जाता है। उसका अभिमान आहत हो जाता है, वह कहती है जो आया है वह नन्द नहीं कोई और इंसान है। इस स्थल पर दोनों का अभिमान आहत और खंडित होता है,

“सुंदरी : लौट आए हैं ? नहीं। लौटकर वे नहीं आए। जो आया है, वह व्यक्ति कोई दूसरा ही है।

नन्द : दूसरा ? तो तुम भी कह रही हो कि मैं कोई दूसरा व्यक्ति हूँ। केवल इसीलिए कि किसी ने हठ से मेरे केश काट दिए हैं ? मुझे पहले से थोड़ा अपरूप कर दिया है ? क्या इतने से ही व्यक्ति एक से दूसरा हो जाता है ?”⁴³ नाटक के अंत में दोनों ही पात्र का स्वाभिमान आहत होता है। दोनों ही अपने टूटे स्वाभिमान को छिपाने के लिए कई तर्क देते चले जाते हैं। अंततः नन्द अपने आहत स्वाभिमान के साथ चला जाता है और सुंदरी टूटे विश्वास और स्वाभिमान के साथ सिसकियाँ लेती रह जाती है। नन्द के इस कथन से कि केश कट जाने के पश्चात् भी सिर्फ उसका बाह्य रूप बदला है न कि उसकी इच्छा और अंतरात्मा। इसका अर्थ निकल कर आता है कि हर एक इंसान को अपनी मुक्ति का मार्ग स्वयं ही तलाशना होता है। गौतम बुद्ध द्वारा दिखाया गया नन्द को मुक्ति का मार्ग अपना महत्त्व रखते हुए भी उसके लिए आरोपित समान था। जो उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके हृदय को आश्वस्त नहीं कर पाया। अपने कटे केशों को देख नन्द व्याकुल हो कहता है, “मैं तुम्हारा या किसी का विश्वास ओढ़कर नहीं जी सकता, नहीं जीना चाहता। ऊन्होंने केश काट दिए, तो क्या व्यक्ति-रूप में मैं

अधिक सत्य हो गया ? जीभ काट देते, हाथ-पैर काट देते, तो क्या और अधिक सत्य हो जाता ?”⁴⁴

इस प्रकार नन्द दो तरफा जीवन जीने में उलझ जाता है। आधुनिक जीवन का यह द्वंद्व बुद्ध के जीवन सिद्धांत और सत्य को नहीं पहचान पाता है। इसीलिए वह अब भी रूप-सौंदर्य के मोहपाश में बंधा रहता है। नन्द को जीवन की सार्थकता बुद्ध के दिखाये मार्ग में नहीं लगती, बल्कि वह जीवन के भौतिक सुखों में ही सुख की परिणिति मानता है। अतः सुंदरी के प्रेम में अगाध श्रद्धा रखते हुए ही अपने जीवन की सार्थकता मानता है। तभी वह कहता है, “काट ही दिए, तो उससे अंतर क्या पड़ता है ? कुछ ही दिनों में फिर नहीं उग आएँगे? अंतर पड़ता, यदि मेरा हृदय बदल देते- आँखें बदल देते। मेरे हृदय में तुम्हारे रूप की अब भी वही छाया है।”⁴⁵ नन्द के समान आज का आधुनिक मानव भी जीवन के बाह्य सुखों के पीछे अन्त तक भागता रहता है। नन्द का सुंदरी के प्रति मोह तब टूट जाता है जब सुंदरी चीख पड़ती है। वह बिल्कुल निसहाय अकेला महसूस करता है। वह यह सोचता है कि थोड़े से उसके रूप में परिवर्तन से क्या उसका सारा व्यक्तित्व बदल गया? वह दूसरा व्यक्ति कैसे हो गया ? सुंदरी के जिस जीवन आदर्श में वह अपना भी आदर्श देखता था वह पलभर में खंडित हो गया। इसलिए नन्द सुंदरी के मोहक बंधन में भी खुद को बाँधकर नहीं रख सका। सुंदरी का रूप-सौंदर्य, उसका भरोसा भी उसे अधूरा-सा लगाने लगा। नन्द न बुद्ध के आदर्शों के साथ रह पाता, न सुंदरी के जीवन आदर्शों के साथ। अतः उसे इस बात का ज्ञान होता है कि उसकी यह दशा उसके खुद के द्वंद्वों के कारण ही है। यहाँ पर मोहन राकेश ने बुद्ध और सुन्दरी को एक जीवन-दृष्टि के रूप में प्रस्तुत किया है न कि व्यक्तित्व के रूप में। तभी नन्द दोनों के प्रभावों से विचलित रहता है और जीवन के लिए कौन-सी दृष्टि उपयुक्त है यह तय नहीं कर पाता है। दूसरी ओर सुंदरी का नन्द के प्रति क्षोभ उसके कटे हुए केश के कारण नहीं था, बल्कि टूटे हुए उसके विश्वास के कारण था। गिरीश रस्तोगी लिखती हैं, “वह साफ़ कहती है वह आकृति एक दुःस्वप्न नहीं यथार्थ है, स्वप्न मेरा अपना यथार्थ, क्या मैं उसका सामना कर सकती हूँ ? उसके पास से जाकर नन्द ने यह सब कैसे हो जाने दिया ? क्यों हो जाने दिया ?”⁴⁶ अंततः नाटक की समाप्ति द्वंद्व की चरम सीमा पर जाकर होती है।

जिस प्रकार नन्द अपने अस्तित्व और जीवन दृष्टि की तलाश में द्वंद्वों से घिरा रहता है और अंत तक भी एक मुकम्मल जीवन को नहीं अपना पाता है, वैसे ही आज का मनुष्य अपनी जिंदगी में नन्द की तरह कई तरह के प्रश्नों से घिरा हुआ है। जीवन अशांत, अस्थिर और उलझा हुआ है। अपने अस्तित्व बोध के लिए निरंतर अपने अन्दर के व्यक्तित्व से ही जूझ रहा है। अतः यह नाटक पार्थिव और अपार्थिव मूल्यों का द्वंद्व है। जिसे मोहन राकेश ने स्वयं कहा था।

इस नाटक में पात्रों और चरित्रों की बात करें तो नाटक के सभी पात्र किसी न किसी प्रतीक की व्याख्या करते नजर आते हैं। यही नहीं आस-पास के वातावरण भी सांकेतिक और प्रतीकात्मक हैं। जैसे कमल का तालाब संसार का प्रतीक है, नन्द अन्तर्मन या अचेतन मन का, सुंदरी भोगवादी दृष्टि की, बुद्ध वैराग्य का और श्यामांग नन्द के अंतर्मन की व्याकुलता का, राजहंस उन्मुक्त इन्द्रिय जीवन का और दर्पण सुन्दरी के रूप-दर्पण का। इसके अतिरिक्त छाया, मृग आदि कई प्रतीकों की व्याख्या करते हैं।

सुंदरी-

नाटक में सुंदरी एक ऐसी नायिका है। जो अपने अस्तित्व के प्रश्नों से संघर्षरत है। सुन्दरी के अस्तित्व का सवाल उसके स्वाभिमान और जीवन के प्रति उसकी दृष्टि से जुड़ा हुआ है। नन्द भी अपने अस्तित्व के सवालों से घिरा नाटक के अंत तक संघर्ष करता रहता है। लेकिन सुन्दरी नन्द की तरह द्वंद्व में नहीं है। जीवन के प्रति उसका नजरिया स्पष्ट है। सुन्दरी नाटक में वैचारिक दुविधा में कहीं भी नहीं दिखती है। उसकी जीवनदृष्टि एकपक्षीय है, जो कि भोगवादी है। सुंदरी का जीवन ऐंद्रिय केन्द्रित है, इसलिए वह आत्म-प्रवंचना के भाव से भी ग्रस्त है, “वह अपने अस्तित्व में भौतिक जगत से बद्ध है, पर यह बद्धता ज्ञान के स्तर पर नहीं, द्वेष के स्तर पर है। यह वह आदिम स्तर है जहाँ चेतना मनुष्य का निर्माण नहीं करती, केवल भोग ही उसके द्वारा होता है। इसके साथ ही उसमें अहं की प्रबलता है जिसके कारण वह सह-भू बनकर रहने की अपेक्षा व्यक्तिहीन इकाई बनकर रह जाती है।”⁴⁷ आज

बहुत से लोग सुन्दरी के समान एकपक्षीय जीवन जीते हैं। भौतिक जगत से बद्ध उनका जीवन द्वेष और अहं से भरा होता है। जिस परंपरा की नींव गौतम बुद्ध जैसे युग-पुरुषों ने बहुत पहले डाली थी जिसमें अहं को त्यागकर मानव सद्भाव की बात की थी, उससे आज का यांत्रिक मानव दूर होता जा रहा है। आज लोग आत्मा से नहीं सुंदरी के समान अपने शरीर के माध्यम से जीना चाहते हैं। सुंदरी के लिए नन्द एक व्यक्ति नहीं दर्पण के समान है, जिसमें वह अपने स्वाभिमान और अहं को देखती है। उसकी आकांक्षा उसके माध्यम से ही पूरी होती है। नन्द उसकी कामना का एक माध्यम मात्र है। सुंदरी के व्यक्तित्व का एक पक्ष यह भी है कि उसका स्वाभिमान टूट जाता है, किन्तु वह ऊपर से ठोस ही दिखती है, तभी वह कहती है, “सुंदरी : चाहती, तो रोक भी सकती थी। परंतु रोकना मैंने नहीं चाहा, क्योंकि वैसा करना दुर्बलता होती। अब इतना संतोष तो है कि दुर्बलता कहीं थी, तो मुझमें नहीं थी।”⁴⁸ सुंदरी की जीवन-दृष्टि अधूरी है, किन्तु उसे वह किसी भी प्रकार से स्वीकार नहीं करती है। आधुनिक मानव भी सुंदरी के समान अपनी अधूरी जिंदगी के सच को जानता रहता है, किन्तु उसे वो स्वीकार नहीं करता है। इसलिए नाटक के अंतिम स्थल पर नन्द के चले जाने के बाद वह रोती या झगड़ती नहीं और न ही उसे रोकती है, न किसी प्रकार की साहनुभूति मांगती है। बस पत्थर-सी जड़ देखती रहती है। किन्तु उसके जाते ही सिसकियां लेते हुए अपने चेहरे को हथेलियों से ढँक लेती है अर्थात् अपने आहत स्वाभिमान को नन्द के आगे नहीं निकालती है। अंततः उसकी वेदना तीव्र हो जाती है। इस प्रकार मोहन राकेश ने सुंदरी के माध्यम से आधुनिक मनुष्य के उस चरित्र की सृष्टि की है, जिसकी भोगवादी जीवन-दृष्टि है। ऐसे व्यक्ति देह के स्तर पर ही जीते हैं और जो अपनी अंतरात्मा को देह के बाद ही जीवन में स्थान देते हैं।

नन्द-

नन्द की परिस्थिति सुंदरी के समान कहीं एक जैसी है तो कहीं भिन्न भी है। वह यह तय नहीं कर पाता कि सुंदरी के सौंदर्य के प्रति या बुद्ध के जीवन-दर्शन के प्रति वह आसक्त है। इसीलिए नन्द के सामने उसकी अपनी निजता का प्रश्न है। या तो अपनी निजता नन्द खुद तय करे या सुन्दरी की

निजता में अपने अस्तित्व को विलय कर दे। नन्द प्रतीक है, उस आज के मनुष्य का, जिसकी अपनी निजता छिन चुकी है। या तो वह अपनी निजता का विलय कर दूसरे की जीवन-दृष्टि को आत्मसात कर लेने में अपने जीवन की सार्थकता समझता है या कभी अपनी निजता का प्रश्न उठाना भी चाहे तो द्वंद्व में घिरा वह भटक जाता है। लेकिन अपने जीवन का मार्ग खुद ही बनाना पड़ता है, जैसा कि इस नाटक में नन्द की परिस्थितियों में हम देख सकते हैं। नन्द सुंदरी की जीवन-दृष्टि का त्याग भी करना चाहता है और उसके प्रति उसका समर्पण भी है। नन्द सुंदरी और बुद्ध दोनों को ही ग्रहण भी करना चाहता है और दोनों का त्याग भी। नाटक के एक अंश में वह कहता भी है, “उनके पास था, तो मन यहाँ के लिए व्याकुल था। अब तुम्हारे सामने हूँ, तो मन कहीं और के लिए व्याकुल है। क्योंकि यहाँ हो या वहाँ, सब जगह मैं अपने को एक-सा अधूरा अनुभव करता हूँ। क्योंकि इस रूप में हो या उस रूप में, अब किसी भी रूप में मैं अपने को झुठलाकर नहीं जी सकता।”⁴⁹ नन्द की चेतना एक स्वतंत्र अस्तित्व के लिए भटकती रहती है। इसलिए नन्द के अन्दर सुंदरी और बुद्ध दोनों के जीवन के प्रति मोह के बाद एक ऊब पैदा हो जाती है, “स्वतंत्रता की चाह, यथास्थिति की ऊब और लभ्य से अलभ्य की ओर संक्रमण, नन्द के व्यक्तित्व के एक अंश को उससे अलग कर देता है। यहीं वह निस्सार अस्तित्व की विडम्बना भोगता हुआ पार्थिव और अपार्थिव के द्वंद्व में फंस जाता है।”⁵⁰ द्वंद्व में घिरे हुए नन्द के चरित्र के सन्दर्भ में जो एक धारणा मन में उभरकर सामने आती है वह यह है कि निर्णय लेने में वह एक दुर्बल व्यक्तित्व का है। किन्तु मनुष्य के पास जब नन्द के समान अपनी कोई आस्था ही नहीं रह गई हो तब उसका द्वंद्व में घिरना स्वाभाविक है। नाटक में जिस द्वंद्व और संशय से नन्द घिरा हुआ है, उसका एक कारण आज की यांत्रिक दुनिया है। आज का मानव अपने चारों ओर यंत्रों का एक ऐसा जाल बुनता जा रहा है, जहाँ मानवीय संवेदना और रिश्तों का विशेष मोल नहीं है, जैसे सुंदरी के जीवन में नन्द का अस्तित्व उसके स्वाभिमान का प्रश्न मात्र है। नन्द के जाने पर भी वह उसे नहीं रोकती है, बल्कि सिर्फ अपना दुःख जताती है, वो भी नन्द के चले जाने पर। सुंदरी की अंतिम प्रतिक्रिया भी नन्द के जाने के कारण नहीं, बल्कि आघात लगे उसके

स्वाभिमान के कारण होती है। नन्द अपने जीवन में अपनी पूर्व जीवन धारणाओं का परित्याग करना चाहता है। अपनी एक जीवन धारणा बनाना चाहता है। इसी कारण अपने जीवन मूल्यों की तलाश में नन्द बेचैन निकल पड़ता है। आज का मानव भी भटकता रहता है और विभिन्न आध्यात्मिक तथा अपने परंपरागत जीवन मूल्यों से कुछ नवीन जीवन-दृष्टि तलाशने का प्रयास करता है। किन्तु आज आध्यात्म के नाम पर ढोंग रचा जाता है और शेष जो बचा है उसमें परंपरा रूढ़ि बन चुकी है। ऐसे में मानव नन्द के समान द्वंद्वों में घिरा अपने लिए एक सही जीवन-दृष्टि नहीं तलाश कर पा रहा है। साथ ही नन्द के समान दूसरे की जीवन-दृष्टि ही जीता रहता है। अतः अपनी पूरी जिंदगी द्वंद्व और भटकाव में ही नन्द के समान गुजार देता है। अतः आधुनिक मनुष्य का जीवन इतना अवमूल्यन बन चुका है कि वह नन्द के समान अपने लिए सही जीवन मार्ग नहीं तलाश कर पा रहा है।

श्यामांग-

श्यामांग नाटक में व्यक्ति से अधिक एक एहसास की तरह प्रतीत होता है। वह नाटक में रिक्त स्थानों को भरने के काम आया है तथा नाटक की सीमित सामग्री को एक विस्तार रूप देने के प्रयोग में लाया गया है। श्यामांग के पात्र को गढ़ने के लिए राकेश ने अपना विशेष लेखनीय कौशल दिखाया है। नाटक के तीनों अंकों और संशोधित संस्करण में उसको लेकर कई प्रयोग किए गए हैं, “पहले अंक में उसे हटाना चाहा तो हट न सका। दूसरे अंक में आकर नेपथ्य के स्वरो में वह नाटक पर छा गया और अपनी चेतना में नन्द से जैसे एकाकार हो गया। पुराने संस्करण के तीसरे अंक में वह ‘मुझे एक किरण ला दो, बस एक किरण, केवल एक किरण’ कहता हुआ उपस्थित दिखाई देता है, पर संशोधित संस्करण में तो उसे नाटककार ने तीसरे अंक से निकाल बाहर ही कर दिया है।”⁵¹ श्यामांग के चरित्र की जो सबसे बड़ी विशेषता है, वह यह है कि नन्द को उसके प्रलाप में अपनी अंतरात्मा की ही आवाज़ लगती है। नन्द के अन्दर के व्यक्तित्व का श्यामांग एक रूप है। जो उसके खंडित व्यक्तित्व का ही एक हिस्सा है। श्यामांग जैसा पात्र आज हमारे आस-पास होता है, जिसे देखकर लगता है जैसे इसकी सोच हमारे जीवन का ही एक प्रत्यक्ष रूप हो। उसके जीवन में घटित परिस्थितियों को

देखकर ऐसा आभास होता है जैसे कल मेरे साथ भी ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती है, फिर भी हम अपने जीवन की जटिल परिस्थितियों और द्वंद्वों से बाहर निकल नहीं पाते हैं। श्यामांग का जीवन भय, एकांकीपन और त्रास से घिरा हुआ एक विसंगतिपूर्ण जीवन है। जिसे नाटककार ने उसके ज्वार के माध्यम से व्यंजित किया गया है।

निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि नाटक का रूपबंध द्वंद्वों और तनावों पर केन्द्रित है और यह एक उत्कृष्ट नाटक है। नाटक का कथानक और सभी पात्र, इसी रूप तनाव और द्वंद्व को ही प्रस्तुत कर रहे हैं। कथानक का बहुत विस्तार न होने पर भी नाट्य कथानक अपने उद्देश्य में सफल है। नाटक आज के आधुनिक मानव का द्वंद्व, मानसिक वृत्ति आदि सभी को प्रस्तुत करने में सफल है। पात्र में नन्द और सुंदरी का द्वंद्व कई स्थानों पर समान, तो कहीं अलग है। किन्तु नन्द जहाँ अस्पष्ट और अपने अस्तित्व को लेकर भटका हुआ आधुनिक मनुष्य का प्रतीक है, वहीं सुंदरी एकालाप जिंदगी जीती हुई एक स्वाभिमानी स्त्री पात्र है, जिसके लिए उसकी जीवन दृष्टि सबसे ऊपर है। वह नन्द को एक पति के समान नहीं, बल्कि एक दर्पण के समान देखती है, जिसमें वह अपने स्वाभिमानी दर्प को ही देखती है। इस प्रकार यह कहना गलत नहीं होगा कि काव्यात्मक दार्शनिक विचारों से परिपूर्ण यह एक आधुनिक नाटक है। जहाँ आज के मानव के समक्ष बुद्ध द्वारा रखा गया एक जीवन-दर्शन है, तो दूसरी तरफ आज की यांत्रिक दुनिया का द्वंद्वात्मक जीवन।

3.3 आधे-अधूरे

‘आधे-अधूरे’ मोहन राकेश की तीसरी सबसे महत्वपूर्ण रचना है। इस नाटक में मोहन राकेश ने अपने पिछले दो नाटकों के समान ऐतिहासिकता का सहारा नहीं लिया है। कथानक और पात्रों का संयोजन भी आधुनिक समय का है। ‘आधे-अधूरे’ का कथानक आज के स्त्री-पुरुष के संबंधों पर आधारित होने के अतिरिक्त परिवार के विघटन की कथा को भी प्रस्तुत करता है। मोहन राकेश के सभी नाटकों में एक घर की खोज देखी जा सकती है। ‘आधे-अधूरे’ घर और घर के व्यक्तियों पर

केन्द्रित नाटक है। नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से विघटित जीवन मूल्य, दाम्पत्य जीवन की विडम्बना, रिश्तों के अधूरेपन को सफलतापूर्वक दिखाया है। इस नाटक का जो केंद्रीय विषय रहा है, जिसे इस नाटक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, वह है एक घर और उस घर के सदस्यों का अधूरापन। इस नाटक में राकेश ने ऐसा घर दिखाया है जो कहने को तो घर है, लेकिन घर की वस्तु से लेकर रिश्ते और संवेदनाएँ सब कुछ बिखरा हुआ है। घर के किसी अवयव में किसी भी तरह की संगति नहीं दिखती है। घर में मुख्य रूप से पांच सदस्य हैं- पति महेन्द्रनाथ, पत्नी सावित्री, बड़ी बेटी बिन्नी, छोटी बेटी किन्नी और बेटा अशोक। इस परिवार में किसी भी सदस्य का किसी से कोई विशेष लगाव नहीं है। सभी की बोली में एक कटुता है। सावित्री और बड़ी बेटी बिन्नी के बीच कुछ मौकों को छोड़कर कोई भी सदस्य किसी के लिए मधुरभाषी नहीं है। घर में सभी के रहते हुए भी कोई किसी के लिए नहीं है, “छोटी लड़की : कुछ पता ही नहीं चलता यहाँ तो। बताओ, चलता है कुछ पता ? स्कूल से आई, तो घर में कोई भी नहीं था। और अब आई हूँ, तो तुम भी हो, डैडी भी हैं, बिन्नी-दी भी हैं, पर सब लोग ऐसे चुप हैं जैसे..।”⁵² घर में हर एक को दूसरे से शिकायत है। चुप रहकर इस घर में मजबूरी है और लड़ना घर से निकलने का एक बहाना। इसे घर की तरह अपनाने के लिए कोई तैयार नहीं है। भारतीय परिवार की एक अपनी खास परंपरा रही है वह है रिश्तों में प्रगाढ़ता, अपनत्व की भावना और एक सूत्र में बंधा हुआ पूरा परिवार। किन्तु जैसे-जैसे आधुनिकता अपने पाँव पसारती गई, वैसे-वैसे घरों के दायरे सिकुड़ते गए और साथ ही सिकुड़ता चला गया रिश्तों का अपनत्व, प्रेम-सौहार्द, एक-दूसरे के लिए संवेदना आदि।

मोहन राकेश को अपनी परंपरा का गहरा बोध था। वह जीवन की परंपरा को महत्त्व देते थे। तभी उनकी रचनाओं में भी उन जीवन मूल्यों को देखा जा सकता है। मोहन राकेश लिखते हैं, “मेरे विचार में परंपरा को दो रूपों में देखा जाना चाहिए। जीवन की परंपरा और रचना की परंपरा। जीवन की परंपरा ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए परंपरा के विकास की बात जनजीवन के सन्दर्भ में देखी और समझी जानी चाहिए, केवल साहित्य के सन्दर्भ में नहीं। सच बात तो यह है कि रचना-धर्मी व्यक्ति

जीवन की परंपरा से कटकर केवल बाहरी प्रभावों के वृत्त में सशक्त और तत्वपूर्ण रचना कर ही नहीं सकता।⁵³ मोहन राकेश परंपरागत पारिवारिक मूल्यों को इस आधुनिक काल के परिवारों में टूटते देख रहे थे। तभी उन्होंने अपने इस नाटक और पूर्व के नाटकों में भी उन परंपरागत मूल्यों को टूटते हुए ही दिखाया है। मानव के अन्दर द्वंद्व की स्थिति परंपरागत जीवन मूल्यों से कटने के बाद ही देखी गई है। आधुनिक काल के शुरू होने से पूर्व रचनाकारों का लेखकीय विषय सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं पर केन्द्रित था। उस समय पारिवारिक विघटन जैसी समस्याएँ नहीं थी। परिवार एक सूत्र में बंधा होता था। आधुनिकता और यांत्रिकता ने व्यक्ति विशेष को प्रभावित करना शुरू किया और धीरे-धीरे पारिवारिक विघटन जैसी समस्या उत्पन्न होने लगी। जैसा कि इस नाटक के परिवार और सदस्यों में देखा जा सकता है। यह नाटक और इसके सभी पात्र आज के पारिवारिक विघटन का एक सटीक उदाहरण है, “लड़का सवाल करता है, इसे घर कहती हो तुम ? बड़ी लड़की को जब सावित्री यह कहती है कि ‘तेरा अपना घर है’ तो वह चौंक उठती है मेरा अपना घर ? गृहस्वामी के सामने एक चुनौती है कि घर उसका है। इसीलिए वह कहता है- ‘तो मेरा घर नहीं है। यह कह दो नहीं है ?’ उसको बार-बार यह एहसास दिलाया गया है कि वह एक कीड़ा है जो उसको खा गया है। अकेली सावित्री उसे किसी तरह थामे हुए है। वह भी जानती है कि मेरे करने से इस घर का जो कुछ हो सकता था, इस घर का हो चुका आज तक। मेरी तरफ से अब यह अंत है उसका, निश्चित अंत।”⁵⁴

नाटक के प्रथम अंक में ही घर का मुखिया महेन्द्रनाथ वर्षों से बेरोजागर है यह बात हमें ज्ञात हो जाती है और घर की गृहस्वामिनी सावित्री नौकरी करती है, ताकि किसी प्रकार वह अपने घर की आर्थिक स्थिति को संभाले रखे। बड़ा लड़का नौकरी की तलाश में है। बड़ी लड़की अपने घर के इस वातावरण से ऊबकर अपनी माँ के मित्र मनोज के साथ भाग गई रहती है। इसके पश्चात् भी बड़ी लड़की अपने माँ-बाप के घर आती रहती है। वह कहती है कि वह इस घर में इसलिए आती रहती है ताकि वह यह देख सके कि आखिर वह कौन सी चीज है, जिसके कारण मनोज उसे हीन भावना

महसूस करवाता है, “हाँ! और मैं आती हूँ कि एक बार खोजने की कोशिश कर देखूँ कि क्या चीज है वह इस घर में जिसे लेकर बार-बार मुझे हीन किया जाता है। तुम बता सकती हो ममा, कि क्या चीज है वह ? और कहाँ है वह ? इस घर की खिड़कियों- दरवाजों में ? छत में ? दीवारों में ? तुममें ? डैडी में ? किन्नी में ? अशोक में ? कहाँ छिपी है वह मनहूस चीज जो वह कहता है मैं इस घर से अपने अन्दर लेकर गयी हूँ ?”⁵⁵ घर में सबसे छोटी है किन्नी जो घर के लोगों का स्नेह न मिल पाने के कारण उदंड हो गई है और कई ऐसे कार्यों में लिप्त रहती है जिसमें उसे नहीं रहना चाहिए। इन पाँचों के अतिरिक्त काला सूटवाला, सिंघानिया, जुनेजा, जगमोहन भी इस नाटक के अन्य पात्र हैं। काले सूटवाला आदमी नाटक का सूत्रधार है। जो प्रारंभ में ही लम्बे संवाद के माध्यम से नाटक का प्रारूप बताता है साथ ही नाटक में विभिन्न संभावनाओं और नाटककार के दृष्टिकोण को भी प्रकट करता है। सिंघानिया सावित्री का बॉस है जो आज के उन गैर-सरकारी संस्थानों के मालकों का प्रतिनिधित्व करता है, जो अपनी संस्था में स्त्रियों का शोषण करते हैं। जगमोहन सावित्री का पुराना प्रेमी है जो एक व्यावहारिक अनुभवी है। वह सावित्री के घर भी उसके बुलाने पर आता है। किन्तु अपनी भावनाओं में बहकर सावित्री को कोई भी सुझाव ऐसा नहीं देता जिससे कोई परेशानी या उलझन पैदा हो। पुरुष चार ‘जुनेजा’ इस नाटक का सबसे अलग पात्र है। महेन्द्रनाथ घर से भागकर हमेशा जुनेजा के घर ही जाता है। जुनेजा महेन्द्रनाथ का सबसे करीबी मित्र ही नहीं है, बल्कि वह इस घर की हर एक परिस्थिति से परिचित भी है। सावित्री भी अपने दुखों के पलों में उसके कंधे पर सर रखकर रोती है। जुनेजा पर सबका विश्वास है। वह हर किसी की बात धैर्यपूर्वक सुनकर ही उसका निष्कर्ष निकालता है। जुनेजा के चरित्र की एक जो विशेषता है, वह है उसकी स्पष्टवादिता वह हर एक समस्या का विश्लेषण करता है और फिर जो तार्किक रूप से सही होता है उसे कहने में वह बिल्कुल संकोच नहीं करता है, “नाटक का यह अत्यंत सशक्त पात्र है और सावित्री तथा महेन्द्रनाथ के स्वभाव एवं संपर्क पर जबरदस्त टिप्पणी करता है। सावित्री के पास कुछ कहने को नहीं रह जाता, दोष केवल महेन्द्रनाथ या परिस्थितियों का नहीं है, सावित्री स्वयं बहुत-सी बातों के लिए जिम्मेदार

है, यह स्वीकार करने को बाध्य होती है।”⁵⁶ मोहन राकेश ने इन पाँचों पात्रों का अभिनय एक ही व्यक्ति के माध्यम से प्रस्तुत करने का विधान किया है, इन पाँचों पात्रों के गुण-चरित्र आज के पुरुषों में देखे जा सकते हैं। तभी सावित्री को ये सभी पात्र किसी न किसी रूप में आधे-अधूरे ही लगते हैं। मोहन राकेश ने नाटक में पात्रों के नाम दिए हैं, किन्तु उनका संबोधन पुरुष एक, स्त्री, बड़ी लड़की, लड़का, छोटी लड़की, दो पुरुष, तीन पुरुष, चार पुरुष यह कह कर संबोधित किया है। इसके पीछे नाटककार का विशेष उद्देश्य है, आज के मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को दर्शाना तथा आज के आधुनिक समाज के व्यक्ति का चरित्र चित्रण करना। इसीलिए नाटककार ने नाटक में पात्रों का संबोधन नाम वाचक के स्थान पर जातिवाचक संबोधन का इस्तेमाल किया है। इस कथन की पुष्टि सूट वाले व्यक्ति के इन संवादों से हो जाती है, “बात इतनी ही है कि विभाजित को मैं किसी-न-किसी अंश में आप में से हर-एक-व्यक्ति हूँ और यही कारण है कि नाटक के बाहर हो या अन्दर, मेरी कोई भी एक निश्चित भूमिका नहीं है। एक विशेष परिवार, उसकी विशेष परिस्थितियाँ ! परिवार दूसरा होने से परिस्थितियाँ बदल जाती, मैं वही रहता। इस परिवार की स्त्री के स्थान पर कोई दूसरी स्त्री किसी दूसरी तरह से मुझे झेलती- या वह स्त्री मेरी भूमिका ले लेती और मैं उसकी भूमिका लेकर उसे झेलता। यह निर्णय करना इतना ही कठिन होता कि इसमें मुख्य भूमिका किसकी थी- मेरी, उस स्त्री की, परिस्थितियों की, या तीनों के बीच से उठते कुछ सवालों की।”⁵⁷ नाटककार द्वारा किया गया यहाँ नाट्य-प्रयोग नाटक को आज के आधुनिक जीवन से जोड़ देता है। नाटक के पात्र और पात्रों के साथ जुड़ी परिस्थितियाँ एवं भाव हमारे खुद अपने लगने लगते हैं। इस नाटक की सबसे बड़ी उपलब्धि और शक्ति यही है कि नाटक के सभी पात्रों के चरित्रों और उनके साथ जुड़ी परिस्थितियों को बड़े वास्तविक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। उनकी भाषा आज की चुभने वाली कटु भाषा है जो नाटक को बहुत ही प्रभावशाली बना देती है। आधुनिक काल के महानगरीय मध्यवर्गीय जीवन की त्रासदी, घुटन, रिश्तों में कटुता आदि को बेबाकी से कह डालती है। प्रतिभा अग्रवाल लिखती हैं, “आषाढ़ का एक दिन में कालिदास और लहरों के राजहंस में नन्द विशेष परिस्थितियों में घर छोड़कर

जाते हैं पर दोनों ही लौट आते हैं। सावित्री को जगमोहन अब स्वीकार नहीं करता और महेन्द्रनाथ तो हर मंगल-शनीचर को जाता और फिर लौटता रहा है। ऐसा लगता है जैसे इस परिवार के सभी पात्र-विशेषकर महेन्द्रनाथ और सावत्री भयंकर कटुता के बावजूद अभिशप्त हैं एक छत के नीचे रहने को, बाहर जाकर भी बार-बार लौटने को।⁵⁸

नाटक के कथानक को संक्षेप में देखें तो 'आधे-अधूरे' एक सशक्त नाट्य-रचना है। इस नाटक की सबसे बड़ी सफलता है इसका शिल्प पक्ष। जिसमें भाषा, कथा का संयोजन एवं परिस्थितियों का स्वाभाविक विकास है। सूत्रधार के रूप में काले सूट वाला व्यक्ति सर्वप्रथम आकर नाटक के प्रारंभ में नाटक का मूल उद्देश्य और नाटक के गूढ़ अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है। नाट्य-कथानक में सावित्री अपने कार्यालय से आने पर घर में सब कुछ बिखरा देखती है। वह खीझ कर अपने बेरोजगार पति महेन्द्रनाथ से यह कहती है कि घर पर रहते हुए कम से कम घर की इन अस्त-व्यस्त चीजों को ही ठीक कर लिया करो। पति-पत्नी की नोंक-झोंक चलती ही रहती है कि उनकी छोटी बेटी आती है और किसी बात पर उसे भी डाँटती है। फिर बड़ी बेटी भी आती है, जो अपने घर के इस माहौल से तंग आकर अपनी माँ के मित्र मनोज के साथ भागकर उसके साथ अपना घर बसा चुकी है। घर के हालातों का प्रथम बार नाटक के इस अंश में पता चल जाता है जब लड़का भी उसी समय आता है और उनके बीच वाक् युद्ध और भी बढ़ जाता है। महेन्द्रनाथ गुस्से से घर से निकल जाता है जिसके बाद सावित्री का बॉस सिंघानिया उसके घर आता है। सावित्री अशोक को नौकरी दिलाने के लिए सिंघानिया से अधिक नजदीकियाँ रखती है। जबकि अशोक को सिंघानिया की हरकतें पसंद नहीं हैं। इसलिए वह सिंघानिया से सही से बर्ताव नहीं करता है। जिसके पश्चात् सावित्री गुस्से में यह निर्णय लेती है कि वह कभी भी अब इस घर के लिए कुछ नहीं करेगी। नाटक में कुछ अंतराल के पश्चात् अशोक और बिन्नी बैठे बातें करते रहते हैं तभी सावित्री अपने कार्यालय से आती है और जगमोहन के चाय पर आने की बात कहती है, साथ ही यह भी कहती है कि अगली बार उसके आने पर शायद वह न मिले। बिन्नी उसे थोड़ा और सोच लेने को कहती है और फिर वहाँ

से चली जाती है। जगमोहन के आने के बाद सावित्री उसके साथ चली जाती है। किन्तु जगमोहन सावित्री को विशेष प्रतिक्रिया नहीं देता है। इसके बाद सावित्री घर लौटते हुए किन्नी को अपने साथ घसीटता हुआ लाती है और किन्नी को कमरे में बंद कर देती है। इसी बीच जुनेजा का घर में प्रवेश होता है, जिसमें महेन्द्रनाथ और सावित्री के संबंधों में बढ़ते कटुता के सन्दर्भ में लम्बी बातचीत होती है। इसके बाद जुनेजा और सावित्री की बातचीत शुरू होती है, जिसमें सावित्री महेन्द्रनाथ और उसके मित्रों जिसमें जुनेजा भी है, के सन्दर्भ में बहुत सारी कटु बातें होती हैं। फिर जुनेजा भी सावित्री की तमाम गलतियों, चरित्र और स्वभाव को लेकर टिपण्णी करता है। सावित्री और जुनेजा के बीच आरोप-प्रत्यारोप अपने बिंदु पर होता है, जब लड़का महेन्द्रनाथ की बाहों को थामे आता है। महेन्द्रनाथ मानो बिल्कुल अन्दर से टूटा हुआ लड़खड़ा कर सीढ़ियों पर गिरता है। लड़का और जुनेजा महेन्द्रनाथ की ओर दौड़ते हैं। लड़का कहता है देखकर डैडी और एक मातमी संगीत के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

इस प्रकार यह नाटक आज के शहरी क्षेत्र में मध्यवर्गीय पारिवारिक विघटन को चित्रित करता है। आज शहर में जिस प्रकार मकानों की चारदीवारी सिकुड़ती जा रही है, उसमें रहने वाले लोगों की जिंदगी घुटती जा रही है। पारिवारिक सामंजस्य समाप्त होता जा रहा है। रिश्ते जुड़ने की जगह टूटते जा रहे हैं। उसी प्रकार इस नाटक के पात्रों के रिश्तों में भी ऊब, घुटन और तनाव बढ़ता जाता है। कोई भी रिश्ता स्वयं में सार्थक और पूर्ण नहीं है। रिश्तों की पूर्णता की तलाश में ही इस नाटक के सभी पात्र जैसे महेन्द्रनाथ से जुनेजा, सावित्री से सिंघानिया, सावित्री से जगमोहन और बड़ी लड़की मनोज से जुड़ती है। लड़का बेरोजगारी में निठल्ला, लड़कियों की तस्वीरें काटता है और छोटी लड़की घर के स्नेह से वंचित अश्लील बातें करने में खुशी महसूस करती है। इस प्रकार नाटक के सभी पात्र अपनी-अपनी आधी-अधूरी जिंदगी में मानो अपने लिए एक आधार ढूढ़ रहे हों। लेकिन निराशा और असफलता के कारण टूट जाते हैं और अंततः वही विषाक्त जीवन जीने के लिए बाध्य होते हैं।

मोहन राकेश के इससे पूर्व दोनों ही नाटकों के पात्र ऐतिहासिक एवं पौराणिक पात्र चरित्र थे। परन्तु राकेश ने इस नाटक में ऐतिहासिक पात्रों के स्थान पर आज के समकालीन समाज से पात्र चरित्र की सृष्टि की है। नाटक के सभी पात्र मुख्य रूप से मध्यवर्गीय परिवार से संबंध रखते हैं। नाटक के सभी पात्रों में एक वैचारिक टकराव है। जिसके कारण उनमें एक पारिवारिक रिश्ता होते हुए भी उनके रिश्तों में कहीं भी सामंजस्य नहीं दिखता है। रिश्तों का अधूरापन पूरे नाटक में देखा जा सकता है। सभी पात्रों में आक्रोश, कुंठा और अभाव को देखा जा सकता है। इस नाटक में आधुनिक पारिवारिक विघटन को स्पष्ट देखा जा सकता है।

सावित्री-

नाटक के मुख्य पात्र महेन्द्रनाथ और सावित्री हैं। नाटक में इनके चरित्र को इनके उलझे रिश्ते तथा टूटते दाम्पत्य जीवन का मूल्यांकन कर समझा जा सकता है। महेन्द्रनाथ और सावित्री के संबंधों में ऐसी कोई भी बात नहीं है जो उन दोनों को खुशी दे सके। रिश्ते में आज तक इनको एक-दूसरे से खीझ, घृणा और उपेक्षा ही मिली थी। नाटक में दोनों में से किसी एक पात्र को इस रिश्तों के अधूरेपन के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। एक दृष्टि से महेन्द्रनाथ तो दूसरी दृष्टि से सावित्री इसकी जिम्मेदार लगती है। सावित्री महेन्द्रनाथ को एक कमजोर और अस्तित्वविहीन व्यक्तित्व का मनाती है। इसीलिए उससे खिन्न रहती है और महेन्द्रनाथ सावित्री का अपने प्रति व्यवहार देखकर दुखी रहता है। सावित्री इस बात से दुखी रहती है कि उसकी जिंदगी में महेन्द्र के अतिरिक्त कोई और होता तो वह अधिक सुखी रह सकती थी। पूर्ण पुरुष की तलाश में वह एक से दूसरे व्यक्ति के पास भटकती है, लेकिन उसकी तलाश पूर्ण नहीं होती है, “वह सोचती है कि महेन्द्रनाथ के स्थान पर यदि दूसरा पुरुष होता तो शायद जीवन में सबकुछ ठीक चलता। इसलिए वह एक के बाद दूसरे पुरुष की खोज करती है। यह खोज पहले मन के स्तर पर शुरू होती है, फिर शरीर के स्तर पर उतर आती है। हर तलाश पर लगता है जैसे आकाश बाहों में भर लिया है; पर हर बार हाथों में आकर जैसे वह टूटकर खंड-खंड हो जाता है। यहाँ अनुभव उसे दुनियादार बना देता है।”⁵⁹ सावित्री एक ऐसी आधुनिक

नारी है जिसे कोई भी पुरुष पूर्ण नहीं दिखता है। अधिक की चाह में वह किसी पुरुष के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाती है। उसके स्वभाव में एक विचलन है जिसके कारण वह किसी रिश्ते के साथ बाँध नहीं पाती है। आज सयुक्त परिवार के स्थान पर एकल परिवारवाद में विश्वास बढ़ता जा रहा है और उस एकल परिवार में भी रिश्तों में एक अपनापन नहीं होता है। आज लोग एक घर नहीं मकान में रहते हैं। जहाँ सब एक-दूसरे से कटे रहते हैं, हर कोई अपनी जिंदगी, अपनी शर्तों पर जीना चाहता है जैसा कि महेन्द्रनाथ और सावित्री के इस परिवार का चित्रण इस नाटक में किया गया है। सावित्री एक आधुनिक नारी है जो परिवार को आर्थिक रूप से तो संभालने की कोशिश करती है, किन्तु वैचारिक रूप से घर में सब से उसका मतभेद है। वह पति को अपूर्ण समझती है। सावित्री परंपरागत भारतीय नारी के समान अपने पति से हर परिस्थिति में जुड़े नहीं रहना चाहती है। उसकी इच्छा परिवार को एक सूत्र में बाँधने की नहीं है, बल्कि व्यक्तिगत स्तर पर अपने सुखों की तलाश करना है। तभी वह नाटक में कई पुरुषों के संपर्क में आती है। वह दूसरा घर बसाने में बिल्कुल भी संकोच नहीं करती, लेकिन हर बार विफल हो जाती है। सावित्री के चरित्र के सन्दर्भ में पुरुष चार कहता है, “पर हर दूसरे-चौथे साल अपने को उससे झटक लेने की कोशिश करती हुई। इधर-उधर नज़र दौड़ाती हुई कि कब कोई ज़रिया मिल जाए जिससे तुम अपने को उससे अलग कर सको। पहले कुछ दिन जुनेजा एक आदमी था तुम्हारे सामने। तुमने कहा है तब तुम उसकी इज्जत करती थीं। पर आज उसके बारे में जो सोचती हो, वह भी अभी बता चुकी हो। जुनेजा के बाद जिससे तुम कुछ दिन चकाचौंध में रहीं, वह था शिवजीत। पर जल्दी ही तुमने पहचानना शुरू किया कि वह निहायत दोगला किस्म का आदमी है। हमेशा दो तरह की बातें करता है। उसके बाद आया जगमोहन। पर शिकायत तुम्हें उससे भी होने लगी थी की वह सब लोगों पर एक-सा पैसा क्यों उड़ाता है? अच्छा हुआ, वह ट्रांसफर होकर चला गया यहाँ से, वरना..।”⁶⁰ इस प्रकार पुरुष चार की बातों से लगता है जैसे सावित्री अपने पति के साथ दाम्पत्य जीवन में खुश नहीं है। लेकिन सवाल उठता है फिर उसकी खुशी अन्य पुरुष के संपर्क में आकर भी तो स्थायित्व नहीं पाती है। इससे सावित्री के उस व्यक्तित्व

का बोध होता है जो महत्वाकांक्षी है। वह खुद भी असल में एक अधूरी आधुनिक समाज की प्रतीकात्मक स्त्री पात्र है जो अपनी भौतिक महत्वाकांक्षा के लिए एक पुरुष से दूसरे के पास भटक रही है। पर कहीं भी उसकी यह पूर्ण की तलाश पूरी नहीं हो पाती है, “यह भावना से विहीन संबंध-सूत्र शर्तों के साथ जुड़ा होने के कारण आन्तरिकता का विकास नहीं होने देता। इसके अभाव में पुरुषों के साथ उसका संबंध वस्तुगत या समूहगत-सा बनकर रह जाता है। यह विलक्षण बात है कि पुरुषों के साथ अपने संबंधों को वह ‘एडवेंचर’के रूप में लेती है और विरोधों के बीच जीती है-क्षणिक वासना और स्थायी प्रेम की युगपत आकांक्षा उसे घर या घाट कहीं का नहीं रहने देती।”⁶¹ सावित्री का यही चरित्र अंततः अपने उसी घर में महेन्द्रनाथ के साथ रहने के लिए बाध्य करता है। आज सावित्री जैसी न जाने कितनी आधुनिक स्त्रियाँ हैं जो पूर्णता की तलाश में भटक रही हैं।

महेन्द्रनाथ-

महेन्द्रनाथ के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि वह इस नाटक में अपनी जिंदगी की लड़ाई हारा हुआ एक पात्र चरित्र है। महेन्द्रनाथ न तो एक पति के रूप में सफल हो सका, न एक परिवार को कुशलतापूर्वक चलाने वाला घर के मुखिया के रूप में। आज महेन्द्रनाथ घर के अन्दर एक वस्तु बनकर रह गया है जिसका बहुत अधिक घर में मोल नहीं है। आर्थिक पराजित और पत्नी के ताने सुनते रहने के पश्चात् अन्दर से महेन्द्रनाथ टूट चुका है। उसका व्यक्तित्व अब बस कुढ़ते रहता है, पर कई बार जिंदगी से हारा हुआ यह इंसान आक्रामक हो जाता है, तो कई बार इन सब से ऊबकर घर छोड़ कर अपने मित्र जुनेजा के पास रहने चला जाता है।

नाटक के एक स्थल पर ये भी पता चलता है कि महेन्द्रनाथ हमेशा से ऐसा नहीं था। वह भी हँसता बोलता था, खुश रहता था, “पुरुष चार : आज महेन्द्र एक कुढ़ने वाला आदमी है। पर एक वक्त था जब वह सचमुच हँसता था। अन्दर से हँसता था। पर यह तभी था जब कोई उस पर यह साबित करनेवाला नहीं था कि कैसे हर लिहाज से वह हीन और छोटा है- इससे, उससे, मुझसे, तुमसे, सभी

से। जब कोई उससे यह कहनेवाला नहीं था कि जो-जो वह नहीं है, वही-वही उसे होना चाहिए, और जो वह है..।”⁶² आज भी समाज में ऐसे बहुत से मनुष्य हैं जिनकी विवाह से पूर्व की जिंदगी और विवाह के पश्चात् की जिंदगी में काफी परिवर्तन आ जाता है। आज के समकालीन समाज में वैवाहिक जीवन की असफलता मनुष्य के पूरे व्यक्तित्व को झकझोरकर रख देती है और यहाँ तक कि इंसान हँसना तक भूल जाता है। उसके अंदर का आत्मविश्वास समाप्त हो जाता है, जैसे महेन्द्रनाथ का सावित्री के साथ विवाह के पश्चात् होता है। उसका पूरा व्यक्तित्व ही बदल जाता है। जहाँ एक ओर सावित्री उसे एक दबबू, टूटा, हारा हुआ इंसान मानती है, वही वह खुद भी इस व्यक्तित्व को स्वीकार कर लेता है। इसके अतिरिक्त महेन्द्रनाथ के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि वह खुद पर बहुत अधिक विश्वास नहीं करता है और हर एक छोटी-बड़ी बातों का फैसला खुद न करके दोस्तों से पूछकर उनके कहने से चलता है। जिसके परिणाम स्वरूप उसकी पत्नी उसे एक अस्तित्वहीन और कमजोर व्यक्तित्व का इंसान मानती है। नाटक के एक स्थल पर पुरुष चार से वह कहती भी है, “स्त्री : इसीलिए कह रही हूँ कि जब से मैंने उसे जाना है, मैंने हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी-न-किसी का सहारा ढूँढते पाया है। खास तौर से आपका। यह करना चाहिए या नहीं- जुनेजा से पूछ लूँ। वहाँ जाना चाहिए या नहीं-जुनेजा से राय कर लूँ। कोई छोटी-से-छोटी चीज खरीदनी है, तो जुनेजा की पसंद की। कोई बड़े-से-बड़ा खतरा उठाना है- तो भी जुनेजा की सलाह से। यहाँ तक कि मुझसे ब्याह करने का फैसला भी कैसे किया उसने ? जुनेजा के हामी भरने से। जिंदगी में हर चीज की कसौटी जुनेजा। क्यों ? क्योंकि जुनेजा तो एक पूरा आदमी है अपने आप में। और वह खुद ? वह खुद एक पूरे आदमी का आधा-चौथाई भी नहीं है।”⁶³ नाटक में राकेश ने महेन्द्रनाथ के रूप में एक ऐसे आधुनिक पुरुष पात्र की कल्पना की है, जो अपनी जिंदगी को जीता नहीं है, बल्कि ढोता है। आज बहुत से लोग समाज में मिल जाएँगे जो किसी न किसी रूप में अपनी जिंदगी से हार कर अपने जीवन को जीते नहीं रहते हैं, बल्कि ढोते रहते हैं। जैसे इस नाटक में महेन्द्रनाथ। वह हर बार ज़िल्लत सहने के बाद घर से निकल जाता है, किन्तु हर बार लौट भी आता

है। महेन्द्रनाथ आधुनिक समय की देन है। जिसकी इच्छाशक्ति समाप्त हो चुकी है। उसकी जिंदगी ऐसी हो चुकी है कि वह दो पैर और दो हाथों के होते हुए भी एक रेंगता हुआ जीव बनकर रह गया है, “महेन्द्रनाथ की वर्तमान स्थिति ऐसी है कि वह जी नहीं रहा अपितु जिंदगी का भार ढो रहा है। मध्यवर्गीय बहुत से लोगों की यही स्थिति हुआ करती है।”⁶⁴ इस प्रकार महेन्द्रनाथ इस नाटक का एक ऐसा पात्र है जो आज के समकालीन समाज में उस व्यक्ति विशेष को संबोधित करता है, जो अपनी जिंदगी में हर तरह से हार चुका है। न ही उसे आर्थिक रूप से सफलता मिली, जो कि आज के समय में सफल होने का प्रतीक है, न पारिवारिक साथ, न सम्मान। इसीलिए महेन्द्रनाथ का व्यक्तित्व एक खंडित इंसान का प्रतीक है।

बिन्नी, किन्नी और अशोक-

महेन्द्रनाथ के समान परिवार के अन्य सदस्यों का भी व्यक्तित्व विसंगतियों से भरा पड़ा है। बिन्नी, किन्नी और अशोक महेन्द्रनाथ की विसंगतियों के ही अन्य रूप हैं। मूलतः मोहन राकेश ने एक ही तरह के जीवन की समस्या को दो पीढ़ियों के माध्यम से चित्रित किया है। कार्ल मार्क्स ने ठीक लिखा है, “जब जीवन एक कार्य-व्यापार मात्र रह जाता है तो उसकी ऐतिहासिक विशेषता खत्म हो जाती है। जिससे विभिन्न वर्गों के लोगों में एक-स्तरीयता आ जाती है। यौन आकांक्षा, जो युवा-वर्ग की अपेक्षित भूख है, वह सबकी भूख बन जाती है और एक खास उम्र के बीत जाने पर बड़ी उम्र के लोग उस ओर अपना रुझान दिखाने लगते हैं। लोग ऐसा व्यवहार करने लगते हैं जैसे वे सब एक ही उम्र के हों। बच्चे बड़े लोगों की तरह हो जाते हैं। जब बूढ़े जवान होने का बहाना करें तो जवान लोगों के मन में उसके लिए कोई आदर नहीं रह जाता है।”⁶⁵ इस नाटक में भी दो पीढ़ियों की विसंगतियों और उसके अधूरेपन को दिखाया गया है। जितने भी मुख्य बड़े पात्र इसमें हैं- जगमोहन, सिंघानिया, सावित्री सभी युवाओं के समान कुत्सित व्यवहार करते हैं। छोटे उम्र के युवा जैसे किन्नी अपने तेरह वर्ष की आयु में बड़ों के समान शारीरिक संबंधों को लेकर बातचीत में आनंद लेती है। बिन्नी अपनी माँ के प्रेमी मनोज के साथ भागकर विवाह कर लेती है और अशोक बेकारी में नग्न तस्वीरों को

काटता अपना दिन बिताता है। रुकी हुई जिंदगी का शिकार अगर अशोक है तो बिन्नी और किन्नी की जिंदगी शिकार है अवरोध में कैद आक्रोश की। किन्नी में आक्रोशता है, तभी किन्नी घर में स्नेह न मिलने के कारण छोटी उम्र में भटक चुकी है। बिन्नी कैद से मुक्ति की कामना में घर से भाग जाती है। परिवार के सभी सदस्य एक ही तरह की कमोबेश जिंदगी जी रहे हैं। महेन्द्रनाथ के पास रोजगार और पैसा नहीं होने के कारण घर में न पत्नी, न बच्चे उसका सम्मान करते हैं, सिवाय अशोक के, जो थोड़ी बहुत सहानुभूति महेन्द्रनाथ से रखता है। घर के ऐसे हालात में सावित्री आर्थिक रूप से घर तो संभालती है, किन्तु वह भी हालातों से ऊब अपनी अधूरी जिंदगी को पूर्ण बनाने में भटकती रहती है। ऐसे में बच्चों के व्यक्तित्व पर इसका प्रभाव स्वाभाविक है। राकेश ने नाटक में कहीं न कहीं हमारे आस-पास की युवाओं का ही चित्रण किया है। कम उम्र में अपने माता-पिता या अभिभावकों का मार्गदर्शन न मिलने पर जीवन में भटक जाते हैं। ऐसे बच्चों पर घर के माहौल और बड़ों के चरित्र की छाया देखी जा सकती है। जैसे इस नाटक में भी महेन्द्रनाथ और सावित्री के चरित्र का ही खंडित अधूरे अंश की छाया उनके तीनों बच्चों में देखी जा सकती है। बिन्नी और किन्नी में उसकी माँ का व्यक्तित्व देखा जा सकता है। बिन्नी का असफल वैवाहिक जीवन और असंतोष उसकी माँ के व्यक्तित्व का ही हिस्सा लगता है। किन्नी का विद्रोही झगड़ालू स्वभाव भी उसकी माँ के व्यक्तित्व का ही अंग प्रतीत होता है। अशोक अपने पिता महेन्द्रनाथ के व्यक्तित्व का ही अंग है। अशोक भी अपने पिता के घर में बेकार बैठा दिन काटता है। अपनी माँ सावित्री के पुरुष मित्रों को अपने पिता के समान ही नापसंद करता है, चिढ़ता है, क्रोध करता है और घर से भाग जाने की उसकी इच्छा होती है। अतः अशोक के स्वभाव में उसके पिता की ही प्रतिछाया दिखती है।

जुनेजा, सिंघानिया और जगमोहन-

नाटक में अन्य ऐसे पात्र हैं जो महेन्द्रनाथ और सावित्री के परिवार से जुड़े हुए हैं। उनके चरित्र में एक विरोधाभास देखा जा सकता है। जैसे जुनेजा के सन्दर्भ में नाटक के शुरू से यह आभास होता है कि वह एक स्वार्थी व्यावसायिक आदमी है। लेकिन नाटक के अंतिम स्थल पर जहाँ उसकी बहस

सावित्री से होती रहती है, उस जगह पता चलता है कि वह तो मित्रता निभाने वाला एक सच्चा दोस्त है। वह हमेशा ही महेन्द्रनाथ की भलाई की बातें सोचता है। वह जुबान से कटु लेकिन सच्ची बातें कहता है। उसके चरित्र की खासियत यह है कि वह अपने आस-पास की घटनाओं को अच्छी तरह से समझता है और उनका मूल्यांकन करता है। तभी नाटक के अंत में सावित्री के सामने महेन्द्रनाथ के व्यक्तित्व के सन्दर्भ में भी तमाम दलीलें देता है। जिससे नाटक के अंतिम स्थल पर जाकर पाठक और दर्शक को महेन्द्रनाथ के व्यक्तित्व के सन्दर्भ में कई नई बातें जानने को मिलती हैं।

जगमोहन एक स्वार्थी इंसान है, जिसे किसी के प्रति विशेष लगाव नहीं है। वह बस अपने स्वार्थ और जरूरतों की पूर्ति के लिए लोगों से जुड़ता है। लोगों से बातचीत में वह मधुरभाषी भी है। दूसरों पर पैसे खर्च करने से भी नहीं झिझकता है। लेकिन भावनाओं से उनका कोई वास्ता नहीं है। उसके लिए सावित्री या कोई भी स्त्री खाली समय में मन बहलाने के लिए एक साधन मात्र है। जगमोहन अंततः सावित्री को जिंदगी में सहारा नहीं देता है, उसके साथ घर नहीं बसाता है। जगमोहन और सिंघानिया के चरित्र के सन्दर्भ में यह वक्तव्य दृष्टव्य है, “वे उस संघर्षशील सावित्री के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसके प्रति आकृष्ट नहीं। उनके लिए सावित्री का संघर्ष तथा व्यक्तित्व कोई मायने नहीं रखता। उनके लिए सावित्री मात्र एक स्त्री है- पुरुष के अवकाश के क्षणों के मनबहलाव का साधन। सिंघानिया सावित्री के घर पहुँचकर जब उसकी युवा बेटा बिन्नी को देखता है तो उसका सारा ध्यान उसकी ओर केन्द्रित हो जाता है।”⁶⁶

सिंघानिया उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो अपने पद का दुरुपयोग कर अपने दफ्तर की स्त्रियों का शोषण करता है। उसके चरित्र में बनावट है, जिससे वह बड़ी-बड़ी देशहित और अहिंसा जैसे मूल्यों की बातें करता है। अपनी अज्ञानता को बड़ी-बड़ी बातों से छिपाता है। जुनेजा और सिंघानिया भी आज के समाज का ही हिस्सा हैं, कभी वे सहानुभूति और सहारा देने का अभिनय करते हैं तो कभी हमारी बिखरी जिंदगी का फायदा उठाने आ जाते हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मोहन राकेश कृत 'आधे-अधूरे' नाटक के सभी पात्र आधुनिक समाज और परिवार के ही एक उदाहरणार्थ जीवंत चरित्र हैं। इसके बावजूद भी सभी पात्रों में एक विचित्र एकरसता देखी जा सकती है। सभी पात्रों में एक तरह की जिंदगी के प्रति मोह है। उनकी जिंदगी अप्रामाणिक प्रतीत होती है। जो व्यवस्था और अपनी सुविधाओं से समझौता किये होते हैं। तभी उन सबकी जिंदगी और चरित्र में एक नकारात्मकता का ही बोध होता है। इस प्रकार देखें तो परिवार के सभी पात्र एक ही मनःस्थिति से गुजरते रहते हैं। उनमें संबंधहीनता, कटुता और एक-दूसरे के प्रति घृणा ही है। सारे पात्र एक छलावे में ही जीते रहते हैं। इसलिए सभी पात्रों को यह परिस्थितियाँ एक जगह लाकर खड़ी कर देती हैं। इसीलिए नाटककार ने नाटक में किसी को नाम से संबोधित न करके लड़का, बड़ी लड़की, छोटी लड़की, स्त्री, पुरुष, पुरुष एक, दो, तीन, चारकह कर संबोधित किया है। काले सूट वाला तभी तो कहता है कि निश्चित कुछ भी नहीं है, "परिस्थितियाँ बदल जाती हैं, मैं वही रहता। यह निर्णय करना इतना ही कठिन होता है कि इसमें मुख्य भूमिका किसकी थी- मेरी, उस स्त्री की, परिस्थितियों की, या तीनों के बीच से उठते कुछ सवालों की?"⁶⁷ अतः यह कहा जा सकता है कि आज के समय में इस नाटक में यह परिवार आज के विघटित परिवार का एक जीवंत उदाहरण है। हाँ बस नाम बदल दो, परिवार बदल दो, परिस्थितियाँ बदल सकती हैं। लेकिन आज के पारिवारिक विघटन का सवाल वही रहेगा जो इस नाटक के माध्यम से उठाने का प्रयत्न नाटककार ने किया है।

3.4 पैर तले की जमीन

मोहन राकेश का अंतिम नाटक है 'पैर तले की जमीन'। जिसका एक अंक लिखकर, अपूर्ण ही छोड़ राकेश इस दुनिया को अलविदा कह गए। जिसके पश्चात् इस अधूरे नाटक को उनके मित्र कमलेश्वर ने पूरा किया है, किन्तु जिस नाट्य-कथा का लक्ष्य लेकर राकेश इस नाटक को लिख रहे थे, उस लक्ष्य तक कमलेश्वर इस अधूरे नाटक को शायद नहीं पहुंचा सके हैं। जिसके कारण साहित्य की दुनिया को इसका अधूरापन अधिक खला। इस नाटक के संबंध में 'नटरंग 21' में कुछ नोट्स छपे

थे, इन नोट्स के माध्यम से मोहन राकेश के अंतिम नाटक को समझा जा सकता है। इस नाटक में मोहन राकेश ने मृत्यु के आगे मानवीय अस्तित्व को बौना दिखाया है तथा मानवीय अंतिम इच्छाओं को चित्रित करना चाहा है। इसके अतिरिक्त नैतिकता, सामाजिक वर्जनाओं और उनके अन्य नाटकों के समान स्त्री-पुरुष के संबंधों की परीक्षा करना इस नाटक का उद्देश्य है। किन्तु नाटक अधूरा रह जाने के कारण, नाटक उस सफलता की ऊँचाई को नहीं छू सका। किन्तु फिर भी इस नाटक की पृष्ठभूमि में आज की आधुनिक ज्वलंत समस्याओं को नाटक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, जैसे- मृत्यु का भय, नैतिकता, भ्रष्टाचार, बलात्कार, स्त्री-पुरुष संबंध, अपराध, निषेध और आत्मस्वीकार आदि विषयों को स्थान दिया गया है। मोहन राकेश ने 'आधे-अधूरे' के समान ही मानवीय जिंदगी के बिखराव, बेचैनी, अस्त-व्यस्त जिंदगी, खालीपन और हड़बड़ाहट को इस नाटक के माध्यम से रूपायित किया है।

नाटक के कथानक पर एक दृष्टि डालें तो यह नाटक भी आधुनिक लोगों के खंडित व्यक्तित्व की कथा है। नाटक के पात्र प्रतीक रूप में आज के वास्तविक मानवीय रूपों को संबोधित करते हैं। नाटककार मोहन राकेश ने आज के अवसरवादी मनुष्यों के चरित्रों को प्रस्तुत किया है। जिनका ऊपरी आवरण देखने से तो सभ्य और सुसंस्कृत दिखते हैं, किन्तु वास्तविकता में उन्हें बस एक अवसर मिलना चाहिए, वे इंसान से शैतान बन जाते हैं। नाटक के सभी पात्र एक विचित्र सी स्थिति में एक जगह पर इकट्ठे होते हैं। अब्दुला, निरा, झुनझुनवाला, नियामत, पंडित, अयूब, सलमा और गुड्डो दीदी, सभी एक ही स्थान पर जमा होते हैं। जो शायद उनकी नियति भी है, "उनका एक साथ इकट्ठे होना उनकी नियति है। वे एक-दूसरे को न जानते हुए भी जानते हैं और सही अर्थों में जानते हुए भी बिल्कुल नहीं जानते। 'पानी को बढ़ने दो, तुम्हारा मुझे जान लेना जीते रहने से ज्यादा जरूरी है?' ... 'मुझे नहीं लगता कि रुककर भी जान पाऊंगा।' लगभग सभी पात्र इसी मनःस्थिति से गुजर रहे हैं।"⁶⁸ दरअसल ये सभी पात्र कश्मीर से दूर एक पर्यटन स्थल पर दो नदियों के मध्य स्थित एक द्वीप पर एक क्लब हाउस में इकट्ठा होते हैं। बाढ़ के आने से क्लब से बाहर जाने वाले पुल में दरार

आ जाती है और सभी पात्र वहीं उस क्लब में फँस जाते हैं। क्लब के क्लर्क का नाम अब्बदुला है। अब्दुला समेत क्लब में निरा, झुनझुनवाला, नियामत, पंडित, अयूब, सलमा और गुड्डो दीदी सभी फँस जाते हैं। बाढ़ का पानी तेजी से बढ़ता रहता है और उनके अन्दर मृत्यु का भय जन्म ले लेता है। सब जीना चाहते हैं। किन्तु उनकी मुसीबत बढ़ती ही जाती है। क्लब में बिजली और टेलीफोन की लाइन भी बाधित हो जाती है। बाढ़ का पानी बढ़ता जाता है और क्लब के अन्दर प्रवेश कर जाता है। उधर बाहर जाने के एक मात्र पुल में भी दरारें बढ़ती जाती हैं। सभी लोगों के अन्दर मौत का भय दिखने लगता है। नाटक में एक ऐसा समय आता है जब सबको लगता है कि अब बचने का शेष कोई मार्ग नहीं बचा है, तो क्लब में मौजूद सभी लोग अपने-अपने तरीके से ज़िंदगी के इस आखरी लम्हे को जी लेना चाहते हैं। तभी अयूब नशों में अपनी इच्छा प्रकट करते हुए कहता है कि उसे इस अंतिम समय में एक औरत का साथ चाहिए। दूसरी ओर पंडित की पत्नी का झुनझुनवाला से संबंध रहता है। जिसका पंडित को भी बोध होता है। अयूब और पंडित दोनों नशे में कहते हैं, “अयूब: उधर मुझे एक औरत चाहिए। औरत जो मौत के खतरे के बावजूद मेरा साथ दे सके। समझे। नहीं समझे कोई बात नहीं।

पंडित : वो आदमी ठीक कहता है।

झुनझुनवाला : क्या ठीक कहता है ?

पंडित : ऐसी औरत चाहिए जो मौत के खतरे के बावजूद साथ दे सके।

झुनझुनवाला : ऐसी औरत होती है..

पंडित: होती है !

झुनझुनवाला : कहाँ देखी है ?

पंडित : अपने घर में ! मेरी औरत..

झुनझुनवाला : क्या मतलब ?

पंडित : मेरी औरत ! मेरी बीवी । जो मौत के खतरे के बावजूद तेरा साथ दे सकती है ।

झुनझुनवाला : क्या बक रहा है तू !

पंडित : तुझे मेरी बीवी की नहीं, इस वक्त भी अपनी इज्जत का खयाल है..

झुनझुनवाला : यह इल्जाम है !

पंडित : तुझ पर नहीं खुद अपने पर । ओह यह जिंदगी । यह इल्जाम है खुद अपने पर ।”⁶⁹ इस प्रकार नाटककार ने नाटक के इस अंश में अयूब के माध्यम से आधुनिक समाज में मनुष्यों की उस दमित भावना को प्रकट करवाया है जो व्यक्ति में कहीं न कहीं किसी रूप में दबी होती है । लेकिन जिंदगी में एक मोड़ ऐसा आता है जब वह भावना बाहर आ ही जाती है । जैसे क्लब में फंसे लोग अपनी अंतिम इच्छा जाहिर करते हैं । पंडित, झुनझुनवाला और उसकी पत्नी के सन्दर्भ में देखें तो पंडित अपने सामने मौत को देख अपनी जिंदगी और उससे जुड़ी सच्चाई को स्वीकार कर लेता है । इसके अलावा अपनी पत्नी के चरित्र को खोलकर रख देता है, इसका इल्जाम भी खुद लेता है । वहीं झुनझुनवाला इस आखरी वक्त में भी अपनी इज्जत को ही बचाना चाहता है । किन्तु पंडित नशे में अपनी जिंदगी के सारे सच उगल देता है । पैरों तले की ज़मीन निकलते देख पंडित अपने लिजलिजी और झूठी जिंदगी के सच को स्वीकार कर लेता है । तभी वह कहता है- “मेरी आज तक की जिंदगी एक नपुंसक आदमी की जिंदगी नहीं रही ? रही है ! किसलिए ? सिर्फ जिंदा रह सकने के लिए ? नहीं ! नहीं ! नहीं ! जिंदा रह सकने के लिए नहीं, दूसरों की तरह जिंदा रह सकने के लिए । इस दोगले दौर में मैं खुद अपना आप बनकर अपने लिए नहीं रह पाया मैं एक साया बन कर रह गया, जो कभी इससे, कभी उससे चिपक जाना चाहता था।”⁷⁰ पंडित के अतिरिक्त अयूब और सलमा के भी वैवाहिक जीवन में उथल-पुथल मचा रहता है । अयूब सलमा के चरित्र पर शक करता है, जिससे दोनों ही एक दूसरे की जिंदगी से दूर हो जाना चाहते हैं । इसके अतिरिक्त अयूब चरित्रहीन भी है ।

बाढ़ के रूप में मौत को सामने देख अंतिम हसरत पूरी करने के लिए रीता का शारीरिक शोषण करता है। वहीं उसकी बुरी नज़र छोटी सी लड़की नीरा पर भी होती है। आधुनिक समाज में इंसान कैसे हिंसक होता जा रहा है उसका चित्रण नाटक में अयूब के माध्यम से किया गया है। नीरा जिसे नाटककार ने जीवन के प्रति आस्थावान लड़की के रूप में चित्रित किया है। वह भी नाटक के एक स्थल पर डरी सहमी दिखती है। एक ओर जहाँ वह बाढ़ के खतरे से निडर उसका सामना करने की बात करती है, वहीं अयूब जैसे इंसान के इस हैवान चरित्र को देख कर भय-ग्रस्त हो जाती है,

“रीता : नीरा .. नीरा..क्या हुआ है तुझे ?

नीरा : मुझे बहुत डर लग रहा है दीदी..

रीता : किस चीज से ..

नीरा : हर चीज से। अँधेरे से, तुम सबसे..मुझे तुमसे भी आज डर लग रहा है, दीदी। तुमसे भी। (कहते हुए वह अयूब की ओर फटी-फटी आँखों से देखती है और एकदम चीख पड़ती है) इस.. इस दरिंदे से, दीदी..(और रो पड़ती है)।”⁷¹ बाढ़ का पानी अंततः क्लब के अन्दर घुस जाता है। क्लब में मौजूद हर एक व्यक्ति ज़िंदगी और मौत के बीच फंसा हुआ है। ऐसे में हर एक व्यक्ति ज़िंदगी में एक आखिरी इच्छा रखता है, तो आखिरी फैसला भी लेता है जैसे झुनझुनवाला मरने से पहले अपने सारे कर्ज़ उतार देना चाहता है तभी वह पंडित को चेक बनाकर देता है और कहता है कि वह अपना सारा कर्ज़ उतार कर मरना चाहता है, “ झुनझुनवाला : ताश छोड़ो... मुझे कुछ जरूरी काम करने हैं... मैं सब कर्ज़ अदा करके मरना चाहता हूँ। खैर... ये दो लाख पांच हजार का चैक लालचंद बालचंद को दे देना.. उनका कमीशन देना था। ये एक लाख सत्ताईस हजार इंजीनियर चटर्जी का कमीशन...।”⁷² नीरा और रीता अपनी इच्छा से मौत को गले लगाना चाहती हैं। मौत उन्हें लील जाए उससे पहले बाढ़ के पानी में कूदकर वे मौत को गले लगा लेना चाहती हैं। वहीं नियामत और अब्दुला जीना चाहते हैं। नियामत अपनी बूढ़ी माँ के लिए ज़िंदा रहना चाहता है, वहीं अब्दुला

अपने नवजात बच्चे के लिए जिंदा रहना चाहता है। जिंदगी के इस मोड़ पर हर कोई अपनी जिंदगी को अलग-अलग दृष्टि से देखता है। पर जिंदगी उनका साथ देती है और अकस्मात पानी धीरे-धीरे कम होने लगता है। क्लब में फसे लोगों को टॉर्च की रोशनी के साथ कई लोग मदद के लिए आते दिखते हैं। अंततः कई घंटे जिंदगी और मौत का सामना करने के बाद सभी बच जाते हैं। लेकिन कुछ एक घंटों की घटना पर आधारित यह नाटक आज के आधुनिक मनुष्य के चरित्र और स्वभाव को चित्रित करने में सफल है।

मोहन राकेश के इस नाटक से पूर्व 'आधे-अधूरे' में जहाँ मध्यवर्गीय परिवार के माध्यम से आधुनिक मानवीय रिश्तों के टूटने, उसके खोखलेपन और अधूरेपन को दिखाया गया है, वहीं 'पैर तले की ज़मीन' नाटक में उच्चवर्ग के उन लोगों की विलासिता और उसमें डूबते-उगते उनके व्यक्तित्व एवं चरित्र को बेहतरीन नाट्य-कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। यह नाटक आज के आधुनिक मानव के सामने यह सवाल उठाता है कि आज रिश्ते अधूरे और खंडित क्यों होते जा रहे हैं। खासकर उच्चवर्ग की जिंदगी भोग-विलास में डूबी सतही जिंदगी जीने के लिए अभिसप्त है। उच्चवर्ग के लोगों के पास भौतिक सुख तो हैं, पर कहीं न कहीं उनकी जिंदगी भी खंडित है। झुनझुनवाला भी नाटक के अंत में अकस्मात मौत को आगे देख अपनी जिंदगी में किये गलत कार्यों को स्वीकार कर लेता है। वह कहता है, "हाँ ... मैं पैदा हुआ तो पहला मंत्र मेरे कान में फूँका गया था कि दुनिया में बड़ी मछली छोटी मछली को खाकर ही जी सकती है और बड़ा होने के साथ-साथ मैंने जाल बुनना सीखा। हर जाल में सैकड़ों मछलियों को उलझाया और खुश होता रहा। दूसरे लोग कहते थे पैसों के पेड़ नहीं लगते। पर मेरे लोग कहते थे लगते हैं और खूब लगते हैं। मैंने पैसों के पेड़ लगाकर देखे.. वे लगे, फूले-फले। मैं सबसे बड़ा मछलीमार था। जिसके कारखाने में बड़ी-बड़ी मछलियाँ डब्बों में बंद की जाती थीं। पर आज इस वक़्त मैं देख रहा हूँ कि मैं खुद भी एक मछली हूँ। अपने ही जाल में फंसकर तड़पते अपने डब्बे में ही बंद।"⁷³

आज के आधुनिक परिवारों में दाम्पत्य जीवन तनाव, बिखराव और अलगाव आदि भावों के कारण खंडित होता जा रहा है। अयूब और सलमा, पंडित और उसकी पत्नी का दाम्पत्य जीवन भी इन्हीं भावों के कारण बिखर जाता है। समाज में आज अनैतिक संबंध बढ़ता ही जा रहा है। अनैतिक संबंध आज एक सामाजिक भ्रष्टाचार बन चुका है। यह सामाजिक भ्रष्टाचार आज समाज के हर एक वर्ग में फैल चुका है। इससे पूर्व मोहन राकेश ने अपने नाटक 'आधे-अधूरे' में जहाँ मध्यवर्गीय जीवन के माध्यम से इस पारिवारिक विघटन को दिखाया है, वहीं इस नाटक में उच्चवर्गीय जीवन को प्रस्तुत किया है। इस नाटक में अयूब जहाँ ऐसी कुत्सित मानसिकता रखता है, वहीं पंडित भी ऐसी मानसिकता का समर्थन करता दिखता है। उच्चवर्गीय भोगवादी आधुनिक जीवन में अयूब प्रतीक है उस व्यक्तित्व का जिसके लिए जीवन का अर्थ ही भौतिक सुख है। जीवन में मृत्यु को समीप देखकर उसकी अंतिम इच्छा यही होती है कि उसे किसी स्त्री का साथ मिले। अयूब कहता है, "मैं होश में हूँ सलमा .. बिल्कुल होश में, दरिया में बह जाने से पहले एक बार पानी यहाँ तक (गले तक) बढ़ आने से पहले एक बार मैं उसके भोलेपन के साथ ..उसके इन्नोंसेंस के साथ..."⁷⁴ अयूब के इस संवाद से आज के मनुष्य के अन्दर की हिंसक पशु प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। आधुनिक कालीन मनुष्य की भोगवाद केन्द्रित मानसिकता ने मनुष्य को कैसे इंसान से जानवर बना दिया है, उसका बोध हमें इस नाटक में अयूब के माध्यम से होता है।

इस प्रकार मोहन राकेश का अंतिम और अधूरा नाटक 'पैर तले की ज़मीन' एक ऐसा नाटक है जिसमें मोहन राकेश ने अब की बार आधुनिक उच्चवर्गीय जीवन और उसके विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है। जिसमें उन्होंने अपने अन्य नाटकों की भांति ही आज के आधुनिक कहे जाने वाले मनुष्य और उसकी बिखरी जिंदगी को चित्रित किया है। इस नाटक के माध्यम से समकालीन मानवीय जीवन और जीवन से जुड़े अंतिम सत्य और मृत्यु, उससे उत्पन्न भय को एक आधार बनाकर इंसान के आंतरिक व्यक्तित्व को बाहर लाने का प्रयत्न नाटककार ने किया है। इसके अतिरिक्त इस नाटक से इस बात का भी बोध होता है कि हम अपनी जिंदगी में कितने भी भौतिक

सुखों को अर्जित क्यों न कर लें, हम सुख संपदा से कितने भी समृद्ध क्यों न हों, किन्तु जब हमारे सामने मृत्यु आती है तब उसके आगे बिल्कुल बेबस और नंगे साबित होते हैं। जीवन में संघर्ष करो या समर्पण, संघर्ष इन्सान को ज़िंदा रखता है और समर्पण उसकी ज़िंदगी को समाप्त कर देता है। जैसे नाटक में जीने की इच्छा और उनका संघर्ष ही नाटक के सभी पात्रों को अंत तक ज़िंदा रखता है। वहीं इसका दूसरा पक्ष यह है कि अयूब और उसकी पत्नी सलमा, पंडित और उसकी पत्नी आदि सभी पात्र एक व्यक्ति के रूप में संघर्षरत नहीं होते हैं। तभी उनका दाम्पत्य जीवन खंडित रहता है। अपनी ज़िंदगी की इस सच्चाई को जानकार भी उसे अपनी ज़िंदगी की नियति मानकर उससे समझौता करके बैठे रहते हैं। वे घिरे हुए हैं संबंधहीनता से। यह संबंधहीनता ही इन्हें अनैतिकता और मूल्यहीनता की ओर घसीट कर ले जाती है। इस नाटक का शिल्प पक्ष उतना ठोस नहीं है। मोहन राकेश के इससे पूर्व तीनों नाटक जिस आधुनिक मानवीय चरित्र उसकी बाह्य आंतरिक जीवन की उथल-पुथल, टूटन, खोखलापन, द्वंद्व, आदि को प्रस्तुत करने में सफल हुए, उस दृष्टि से यह नाटक उतना सफल नहीं हो पाया है। फिर भी यह नाटक आज एक आधुनिक मानव के विकृत व्यक्तित्व, कुंठा, संबंधहीनता, नफरत आदि को कमोबेश चित्रित करते नजर आता है, ऐसा कहना गलत नहीं होगा।

‘पैर तले की ज़मीन’ नाटक के सभी पात्र आज के उच्चवर्गीय जीवन के प्रतिनिधि पात्र हैं। जिनका जीवन यौन-कुंठा, अस्तित्वहीनता, धोखा, अविश्वसनीयता आदि से घिरा हुआ है। अब्दुला, नियामत, अयूब, सलमा, नीरा, रीता, झुनझुनवाला ये सभी पात्र आधुनिक जीवन के विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत करते हैं।

अयूब-

आधुनिक मनुष्य जो यौन कुंठाओं से ग्रसित है, जो स्त्री को सिर्फ भोगवादी दृष्टि से ही देखता है, जिसका जीवन अविश्वास और संशय ग्रस्त है, ऐसे ही व्यक्ति का प्रतिनिधि पात्र अयूब है। अयूब का

दाम्पत्य जीवन संशयग्रस्त और टूटा हुआ है। उसे अपनी पत्नी सलमा के चरित्र पर भरोसा ही नहीं है। वह उसके चरित्र का मूल्यांकन उसके अतीत के साथ जोड़कर करता है। यही कारण है कि अपनी पत्नी सलमा को अपनी जिंदगी में सही स्थान नहीं देता है। उससे प्रेम के स्थान पर घृणा करता है। अयूब के चरित्र से एक ऐसे पुरुष की मानसिकता का आभास होता है, जिसके लिए स्त्री की पवित्रता ही पति से प्रेम, सुख और सम्मानित जीवन की गारंटी देती है। आज का समाज एक ओर आधुनिकता के नये-नये आयाम गढ़ रहा है। दूसरी ओर समाज में न जाने कितने अनगिनत अयूब जैसे व्यक्तित्व के लोग हैं, जो अपने दाम्पत्य जीवन को इसी मानसिकता के कारण स्वाहा करने पर तुले रहते हैं। जीवन के सुनहरे भविष्य के स्थान पर वे उस अतीत को ढोते हैं, क्योंकि उनकी पत्नियों का कोई अतीत होता है। यही सोचकर अपने दाम्पत्य जीवन को बर्बाद कर लेते हैं। अयूब भी एक ऐसा ही नाट्य पात्र चरित्र है जो सलमा के प्रति एक नकारात्मक भाव रखता है। विवाह से पूर्व डॉक्टर के साथ सलमा के प्रेम संबंध को लेकर वह पल-पल उसे जलील करता रहता है। इसके अतिरिक्त अयूब यौन कुंठित भी है। वह क्लब में बाढ़ से घिर जाने की बात जानकर और मौत को नजदीक देखकर अस्वाभाविक लालसा रखता है। उसकी शारीरिक भोग की लालसा रहती है। ऐसे में न केवल रीता के साथ यौन कुंठित अयूब बलात्कार करता है बल्कि नीरा, जो एक छोटी-सी लड़की है उसका भी यौन शोषण करता है। अयूब का रीता और सलमा से नाटक के एक स्थल पर हुए संवाद से उसकी यौन उत्कंठा का पता चलता है, “सलमा : तुम उसकी तरफ देख भी नहीं सकते।

अयूब क्यों ?

रीता : इसलिए कि वह अकेली नहीं है।

सलमा : और तुम जो चाहते हो, वह नहीं कर सकते।

रीता : मुझे तुम्हारे इस इरादे से नफरत है..

अयूब : नफरत, तुम्हें..तुम्हारा मेरा कोई रिश्ता नहीं ... सिवा उन अधूरे लम्हों के.. और नफरत का सवाल बिना रिश्तों के नहीं उठता.. और रिश्ते कायम होते देर लगती है। (रीता की बांह पकड़ता है) पर अब इस मौत के साये में कुछ रिश्ते तय होकर रहेंगे..।”⁷⁵ अयूब का व्यक्तित्व एक आत्मकेंद्रित व्यक्ति का है, जो सिर्फ पाने की लालसा रखता है। तभी अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए हर प्रकार से दूसरों को आहत करता है, शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार से। एक तरफ वह अपनी पत्नी सलमा को बार-बार जलील करके उसे मानसिक तौर पर प्रताड़ित करता है तो दूसरी ओर रीता और नीरा का शारीरिक शोषण करता है। आज के आधुनिक समाज में अयूब जैसे बहुत से पात्र चरित्र हैं ऐसा कहा जा सकता है, जिसका जीवन भोग विलास केन्द्रित होता है। साथ ही स्त्री उसके लिए उसकी जरूरत की एक वस्तु के समान होती है। जिसके साथ उसका संबंध तब तक ही होता है जब तक उसे उसकी जरूरत होती है। अतः अयूब आधुनिक समाज में यौन कुंठित लोगों का प्रतिनिधि पात्र है।

सलमा-

सलमा नाटक में अयूब की पत्नी और नाटक की एक मुख्य स्त्री पात्र है। सलमा के चरित्र का मूल्यांकन करें तो वह एक ऐसी पत्नी है जो अपने पति अयूब से जलील होकर भी उससे अलग नहीं होती है। लेकिन अयूब के चरित्र से घृणा भी करती है। वह उसे खुश रखने का पूर्ण प्रयत्न करती है, किन्तु अयूब हमेशा उसके अतीत को लेकर उसे ताने मारता है। सलमा का यह चरित्र, उसकी यह भावना, उसे भारतीय परम्परावादी स्त्री के नजदीक लेकर जाता है। जहाँ पति की तमाम बुराइयों के बावजूद भी वह उसे अपनी जिंदगी से अलग नहीं करती है, अपनी जिंदगी में जो सुनहरे दापत्य जीवन की कभी कल्पना की थी, उसके टूटने पर भी उम्मीद का दामन नहीं छोड़ती है। जिंदगी में सब सही हो जाने की आश लिए जिंदगी में तमाम जिल्लत, कष्टों, दुखों को झेल जाती है। किन्तु कहीं न कहीं अपने पति के प्रति उसका मोह नहीं टूटता है,

“अयूब : पर तुम्हारे अन्दर की आवाज़ नफरत की नहीं है ।

सलमा : है ।

अयूब : नहीं यह नफरत की नहीं ऊब की आवाज़ है ।

सलमा : जिसने मुझे खुदखुशी के कगार तक पहुँचा दिया था ।

अयूब : वह कगार अब भी मौजूद है । मुझे जहाँ जाना है, मैं चला जाता हूँ । तुम्हें जहाँ जाना हो, तुम जा सकती हो ।

सलमा : तुम इस वक़्त मेरे पास से नहीं जा सकते हो..

अयूब : पर तुम मुझसे ऊब चुकी हो...

सलमा : हैं, ऊब तो चुकी हूँ !

अयूब : तो ?

सलमा : पर खुदखुशी और अनचाही मौत में बहुत फर्क है !

अयूब : तो तुम चाहती हो कि मैं..

सलमा : कि इस अनचाही मौत के वक़्त तुम मेरे पास रहो ।

अयूब : लेकिन क्यों ?

सलमा : क्योंकि मैं चाहती हूँ । मैं तुमसे सिर्फ इतना ही चाहती हूँ.. सिर्फ इतना ही..।”⁷⁶

सलमा के इस कथन से सलमा के अन्दर उस भारतीय स्त्री का दर्शन होता है जो अपनी जिंदगी के आखरी लम्हों में भी अपने पति के साथ ही रहना चाहती है । अतः सलमा के चरित्र में एक भारतीय परंपरागत स्त्री की वह छवि दिखती है जो अपने दाम्पत्य जीवन में तमाम उपेक्षा के बाद भी उसका निर्वाह अपनी आखरी सांस तक करना चाहती है । इसके अतिरिक्त सलमा के चरित्र में एक

आधुनिक स्त्री की छवि भी दिखती है, जो समय आने पर अपने पति अयूब से यह कहने में भी नहीं झिझकती है कि वह उससे नफरत करती है। उसके चरित्र में एक आधुनिक स्पष्टतावादी नारी की छवि भी दिखती है,

“सलमा : तो तुम समझते हो कि तुम.. कि तुम मुझे ज़लील करके..

अयूब : यही-यही.. बिल्कुल यही कि मैं तुम्हें ज़लील करके ..या तुम मुझे दफ़न करके जिंदा तो हम दोनों रह सकते हैं, जी नहीं सकते।

सलमा : तो तुम मुझे ज़लील करोगे.. करते जाओगे?

अयूब : और तुम मुझे दफ़न करोगी और करती जाओगी?

सलमा : मैं तुमसे नफरत करूँगी और करती जाऊँगी !

अयूब : तो मैं तुम्हें ज़लील करूँगा और करता जाऊँगा !

सलमा : (चीखकर) चले जाओ यहाँ से.. हट जाओ मेरे पास से मैं तुमसे नफरत करती हूँ..नफरत..नफरत..!”⁷⁷

इस प्रकार सलमा के चरित्र में दाम्पत्य जीवन के प्रति आस्था दिखता है। जिससे उसमें परंपरागत नारी रूप का दर्शन होता है। वहीं अपने पति अयूब के कुंठित व्यक्तित्व के प्रति उसकी नफरत और उसकी स्पष्टवादिता, उसके आधुनिक नारी चरित्र को उभारता है।

अब्दुल्ला-

अब्दुल्ला नाटक का एक ऐसा पात्र है जो क्लब में क्लर्क के पद पर काम करता है और अपने काम के प्रति ईमानदार है। पूरे नाटक में तमाम मुसीबतों में भी उसे दिनभर के हिसाब की चिंता उसके काम के प्रति निष्ठा को चित्रित करती है। नाटककार ने अब्दुल्ला जैसे पात्रों के माध्यम से यह बताना चाहा है कि आज की इस आधुनिक दुनिया में जहाँ झूठ, बेईमानी, मक्कारी और घोटाला करना आज के

इंसान की फ़ितरत बन चुका है, वहीं अब्दुल्ला जैसे चंद ईमानदार लोग भी हैं, जिन पर भरोसा किया जा सकता है। अपने काम के प्रति उसकी निष्ठा का इससे ही पता चल जाता है कि वह अपने काम की व्यस्तता में अपने नवजात शिशु को भी नहीं देखने जा पाता है, “पर बता, अब मैं इससे क्या कर सकता हूँ? बोटलों का हिसाब ठीक रखता हूँ, तो किसी न किसी बिल में गड़बड़ी हो जाती है। बिलों का हिसाब ठीक रखता हूँ, तो बोटलों की नाप-जोख में फर्क पड़ जाता है। इन्हीं सब उलझनों में घर से आयी चिट्ठी का जवाब भी अब तक नहीं दे पाया। वे लोग वहाँ न जाने क्या सोच रहे होंगे ! कि कैसा आदमी है- खुशखबरी पाकर मिलने आना तो दूर, चिट्ठी की पहुँच तक का पता इससे नहीं दिया गया।”⁷⁸ इसके अतिरिक्त बाढ़ के आने पर क्लब में मौजूद लोगों के प्रति उसकी चिंता उसके व्यक्तित्व में मानवीयता को दर्शाती है। बाढ़ के बढ़ते खतरे को देखते हुए वह लगातार क्लब में लोगों को एक स्थान पर एकत्रित होने को कहता रहता है, साथ ही नियामत से कहकर कई को तो पुल के टूटने से पहले उस पार पहुँचा भी आता है। अतः अब्दुल्ला के चरित्र में यह मानवीय गुण उसे आज के आधुनिक समाज में ईमानदार व्यक्ति का प्रतीकात्मक पात्र चित्रित करता है।

झुनझुनवाला-

झुनझुनवाला नाटक का एक ऐसा पात्र है जो आज के भोगविलास में डूबे, भ्रष्टाचारी, व्यापारी वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। उसने अपनी पूंजीवादी दुनिया का निर्माण, दूसरों का शोषण और अत्याचार करके निर्मित किया है। वह अपने चरित्र का वर्णन नाटक के एक स्थल पर खुद ही करता है और कहता है, “दूसरे लोग कहते थे पैसों के पेड़ नहीं लगते। पर मेरे लोग कहते थे, लगते हैं और खूब लगते हैं। मैंने पैसों के पेड़ लगाकर देखे.. वे लगे, फले-फूले.. जब पेड़ फल-फूल गए तो मैंने धर्म, नैतिकता, विज्ञान, राजनीति- सबको अपने मूल्य दिए..मूल्य। सीधे-सीधे कहूँ तो सबको अपना व्यापार बनाया। इसका दाम इतना। उसका दाम उतना। हर चीज, हर बात का प्रतिनिधि मैं था। मैं सबसे बड़ा मछलीमार था जिसके कारखाने में बड़ी-बड़ी मछलियाँ डब्बों में बंद की जाती थीं। मैंने सैकड़ों क्रल्ल कराए। करोड़ों का माल स्मगल किया। लाखों रुपये रिश्वत में दिए, करोड़ों का टैक्स

बचाकर काला धन जमा किया। लोग दूषित वातावरण का इलाज ढूंढने की कोशिशें कर रहे हैं। सब पढ़कर मुझे हंसी आती थी। क्या कोई भी कमेटी, कोई भी कमीशन इस वातावरण को मुझसे साफ़ कर सकता है ?”⁷⁹ झुनझुनवाला पूंजीवादी वर्ग चरित्र का प्रतिनिधित्व करता है। आज समाज में जितने भी अवैध तरीकों से धन संपदा बनायी जाती है, जितने भी गैर-कानूनी धंधे किये जाते हैं, वह सारे धंधे झुनझुनवाला जैसे पूंजीवादी मानसिकता के लोग ही करते हैं। झुनझुनवाला यहाँ तक कि अपने मित्र पंडित के साथ भी छल करता है। वह पंडित की पत्नी के साथ भी अवैध संबंध बनाता है। जिसकी उसे कोई ग्लानि नहीं है। इस प्रकार झुनझुनवाला आधुनिक समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है, जो एक के बाद कई स्त्रियों के साथ संबंध स्थापित करता है। मानवीय संबंध, रिश्ते-नाते उसके लिए सिर्फ़ फायदे के अर्थ में होते हैं। झुनझुनवाला के चरित्र के अन्दर तमाम सामाजिक बुराइयाँ हैं। इसके बाद भी झुनझुनवाला अपने किये गए गलत कार्यों के प्रति नाटक में आत्मग्लानि या शर्मिंदगी भी महसूस करता है। मोहन राकेश के ‘आधे-अधूरे’ नाटक में एक व्यक्ति द्वारा विभिन्न चरित्रों के नाट्य अभिनय की परिकल्पना इसी उद्देश्य से की गई थी। नाटक के एक स्थल पर झुनझुनवाला अपने किये गए सारे कर्मों के प्रति ग्लानि महसूस करता है और पंडित से माफ़ी मांगते हुए कहता है, “पर आज इस वक्त मैं देख रहा हूँ कि मैं खुद भी एक मछली हूँ। पानी में तैरती मछली नहीं, अपने ही जाल में फंसकर तड़पती, अपने डब्बे में बंद। आज मैं जान सका हूँ कि मैं दूसरों की ही मौत नहीं खुद अपनी मौत भी हूँ। मैं तुम्हारी तरह चाहते हुए भी अपने को बिल्कुल नंगा नहीं कर पाऊंगा.. क्योंकि मैं अपने नंगेपन को देखने लायक भी नहीं रह गया हूँ। अब जो भी, जैसा कुछ भी है उसी के साथ मुझे भी मर लेने दो..।”⁸⁰

इस प्रकार झुनझुनवाला के चरित्र के दो आयाम देखे जा सकते हैं। एक ओर ज़िंदगीभर एक व्यापारी के रूप में तमाम अवैध कार्य करता है और ज़िंदगी की भोगवादी दृष्टि में विश्वास करता है। जिसके लिए रिश्ते-नाते, दोस्ती-यारी सिर्फ़ मतलब और स्वार्थपूर्ति के लिए हैं। जो ज़िंदगी को मुनाफा और नुकसान के तराजू में तौल कर देखता है। किन्तु ज़िंदगी में मौत के आगे खुद को बेबस देख अपनी

इस जिंदगी के प्रति ग्लानि महसूस करता है और अपने मित्र पंडित के आगे अपने किये गए सारे गलत कर्मों को आत्मस्वीकार करता है।

पंडित-

पंडित नाटक का एक ऐसा पात्र है जो भोगवादी प्रवृत्ति का है। आज की आधुनिक जीवन शैली जिसमें क्लबों में जाना, वहाँ ताश खेलना, नशा करना आदि उसके जीवन का अहम हिस्सा है। नाटक में कहीं भी पंडित के कार्यों का उल्लेख तो नहीं किया गया है, लेकिन नाटककार ने उसे पंडित कहकर उसका चित्रण किया है। ऐसे में शायद आज के आधुनिक युग में पूजा-पाठ या कर्मकांड करवाने वालों की ओर भी नाटककार ने इंगित किया है, जो कि आज अक्सर भोगविलास में लिप्त पाए जाते हैं। इस वर्ग के लोगों को जहाँ सांसारिक मोह-माया से ऊपर माना जाता था, वहीं आज अक्सर खबरों में उन्हें इन आधुनिक कुरीतियों में संलग्न पाया गया है। पंडित का चरित्र भी ऐसा ही है। धन संपदा से सम्पन्न होते हुए, सामाजिक प्रतिष्ठित होते हुए भी वह अन्दर से खोखला है। क्लब में भी वह लगातार ताश खेलने, सिगरेट और शराब के सेवन में ही लगा रहता है। इस झूठी जिंदगी को जीते हुए पंडित अपनी जिंदगी की सच्चाई से हमेशा मुंह मोड़ता रहता है। अपनी पत्नी का संबंध झुनझुनवाला से जानते हुए भी परिस्थितियों से समझौता किये बैठा रहता है। नाटक के एक अंश में वह खुद इस बात को कहता है, “घर था। पर घर की जिंदगी नहीं थी। बीवी है पर बीवी नहीं है... उसकी तस्वीरें औरों के बटुओं में बंद हैं। महीनों बाहर भटकना ... यह और यह हासिल करके खुश होना चाहना, पर उदास होते जाना.. यही मेरा प्राप्य था। पीछे घर में क्या होता था, पता नहीं। एक झूठा खेल। एक-दूसरे को विश्वास दिलाते रहने का। कुछ था, जिससे मैं अपनी हर जीत के साथ हारा हुआ महसूस करता था। कुछ था, जिससे मैं हर वक्त भागना चाहता था.. और इस बार इस झुनझुन के साथ यहाँ आया था, तो भी भागकर.. इसी से भागकर इसी के साथ। इस आदमी के साथ, जिसके चेहरे से मुझे नफरत है। इसने हमेशा एक कठपुतली की तरह मुझे साथ रखा है। मैं इसके

लिए ताश की बाजी का वह हाथ हूँ जो इसके हाथ में है। यह रही इसके ताशों की गड्डी जिसे खेल-खेलकर मैं खोखला हो चुका हूँ।”⁸¹

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पंडित आधुनिक समाज का ऐसा प्रतीकात्मक चरित्र है। जिसका व्यक्तित्व खोखला है। पंडित की वास्तविक जिंदगी ऐसा है जहाँ वह खुद को छलता है। अतः जो भौतिक सुखों और भोगवादी जिंदगी में लीन रहता है, साथ ही अपनी जिंदगी भी दूसरों के इशारों पर जीता है। वही दूसरों के हाथों की कठपुतली बना रहता है।

रीता और नीरा-

रीता और नीरा दोनों ही उच्च वर्ग में पली-बढ़ी स्त्री पात्र हैं। दोनों की ही आधुनिक जीवन-शैली है, जिसमें क्लब में टेबल-टेनिस खेलना, स्विमिंग-पूल में लुत्फ उठाना आदि इनकी जीवन-शैली का हिस्सा है। उम्र में रीता नीरा से बड़ी है, मित्रवत संबंध होते हुए भी रीता नीरा का छोटी बहन की तरह ख्याल रखती है। इससे रीता के चरित्र में आत्मीयता का पता चलता है। वहीं नीरा उम्र में छोटी होने की वजह से उसके चरित्र में थोड़ी चंचलता होती है। क्लब के लोगों की बिना जानकारी के ही वह रीता संग स्विमिंग पूल की टूटी दीवार पारकर मस्ती करने चली जाती है। नीरा छोटी उम्र की नवयुवती है इसीलिए आज की आधुनिक नवयुवतियों के समान मुश्किलों से सामना करने का साहस रखती है। तभी पुल के टूटने और बाढ़ का खतरा बढ़ने पर भी वह बेझिझक कहती है, “टूट भी गया हो तो इसमें इतना घबराने की क्या बात है? अरे डेढ़-दो फुट की दरार पड़ी है..बस, चार-पांच फुट तक तो आदमी कूदकर ही पार कर सकता है।”⁸² रीता एक साहसी स्त्री है, अयूब रीता का शारीरिक शोषण करने का प्रयास करता है, जिसके बाद उसकी नजर नीरा पर होती है। अमूमन कोई भी स्त्री उस इंसान के आगे दुबारा नहीं जाना चाहेगी, जिसने उसके साथ कोई शारीरिक शोषण करने का प्रयत्न किया हो। लेकिन रीता नीरा को अयूब की बुरी नजर से बचाने की पूरी कोशिश करती है। अयूब के सामने आकर कहती है, “इसलिए कि वो अकेले नहीं है। मुझे तुम्हारे इन इरादों से नफरत है।”⁸³ नाटककार

ने रीता के चरित्र के माध्यम से मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति को भी उजागर किया है। प्रत्येक मनुष्य या जीव में काम की भावना अवश्य होती है। तभी क्लब में बाढ़ के रूप में सामने मौत देखकर जहाँ अयूब अपनी अंतिम इच्छा पूरी करना चाहता है, वह रीता के साथ जबदस्ती करने का प्रयत्न करता है। वहीं एक बार शायद रीता के अन्दर का व्यक्तित्व भी उसमें हामी भर रहा था। वह अपने अन्दर के इस व्यक्तित्व को जानवर कहकर बुलाती है। वह नीरा को कहती है, “मैं उसे अपने से परे हटा रही थी और वह जानवर उसे अपने पास बुलाना चाह रहा था। वह चाह रहा था कि मरने से पहले एक बार ..चाहे कुछ भी हो सिर्फ एक बार...”⁸⁴ रीता के इस संवाद से उसके आधुनिक स्त्री चरित्र का बोध भी होता है जो आज के पुरुषों के समान शारीरिक संबंध बनाने से पूर्व बहुत अधिक नहीं सोचती है। नीरा भी छोटी-सी उम्र में ही सारी आधुनिक जीवन-शैली को अपना चुकी है। जबकि वह बहुत अधिक किसी गहरे अर्थ को समझने में परिपक्व नहीं है, फिर भी वह क्लब आती है और यहाँ क्लब में मौजूद सारे आधुनिक मनोरंजन के साधन का उपभोग करती है।

इस प्रकार रीता और नीरा दोनों ही उच्चवर्ग की आधुनिक प्रतीकात्मक स्त्री पात्र हैं। जिनकी आधुनिक जीवन-शैली है। क्लब में दोनों ऐसी परिस्थिति में फंस जाती हैं कि दोनों का ही शारीरिक मानसिक शोषण होता है। इसके पश्चात् भी दोनों सभी मुसीबतों का सामना अंत तक करती हैं। इससे उसके अन्दर की आधुनिक स्त्री के उस रूप का दर्शन होता है जो निडर और साहसी भी है। जो किसी भी परिस्थिति में टूटती नहीं है, बल्कि ऐसे हालात में भी खुद को संभालती है और तुरंत निर्णय लेने में सक्षम है।

इस प्रकार मोहन राकेश के तीन पूर्ण और एक अधूरे नाटक के कथानक और पात्र चरित्रों का समग्र मूल्यांकन करने पर प्रतीत होता है कि मोहन राकेश को न केवल अपने समकालीन समाज का गहरा बोध था, बल्कि आधुनिक मानवीय चिंतन और लोगों के बदलते व्यक्तित्व का भी गहरा बोध था। ऐसा प्रतीत होता है जैसे अपने आस-पास के भोगे हुए सत्य को उन्होंने ऐतिहासिक और आधुनिक

नाटकीय- कथा और पात्र-चरित्र के रूप में सृजित कर दिया हो। प्रथम दो नाटकों में मिथकीय कथा और ऐतिहासिक चरित्रों के माध्यम से आधुनिक मानव के द्वंद्व को उन्होंने बड़ी सफलता से प्रस्तुत किया है। मोहन राकेश के नाटकों में आज के आधुनिक युग का कटु सत्य छिपा है। आज के साहित्यकार का सत्य है। स्त्री-पुरुष के बनते-बिगड़ते संबंधों का सत्य है। उससे उत्पन्न बिखराव, अलगाव और खंडित चरित्र का सत्य है। मोहन राकेश अपने प्रथम नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में जब राजकीय सम्मान और लेखकीय प्रतिभा के द्वंद्व की बात करते हैं तब वह अवश्य ही अपने युग के लेखकों की ओर इंगित करते हैं, जो जीवन में लेखकीय कर्म और राज सत्ता से प्राप्त सुखों के बीच द्वंद्व में घिर जाते हैं। अंततः यह लोभ कितनों को सत्ता का चाटुकार बना देता है। नाटक में प्रियंगुमंजरी, राजमहिषी, रंगनी-संगनी आदि सभी राजकर्मचारी आज के कर्मचारी के ही प्रतीक हैं जो कई बार झूठे तर्क-वितर्क में लगे रहते हैं। तो कहीं अहंकार में दूसरे के चीजों को कमतर आंकते हैं। अतः नाटक में मानवीय द्वंद्व, जीवन की वास्तविकता तथा आज की दौड़ती-भागती दुनिया को ही चित्रित किया गया है।

'लहरों के राजहंस' में भी राकेश ने आज के द्वंद्व में घिरे मनुष्य की कथा को ही नन्द के माध्यम से चित्रित करने का प्रयत्न किया है। नाटक में नन्द के अकेलेपन और आंतरिक संघर्ष के सहारे आज के लोगों के अकेलेपन और संघर्ष को ही प्रकट किया गया है। दाम्पत्य जीवन में चाहे-अनचाहे एक-दूसरे के अनुकूल खुद को नहीं ढाल पाने की कसक 'लहरों के राजहंस' और 'आधे अधूरे' दोनों ही नाटकों में देखी जा सकती है। 'आधे-अधूरे' में यह बिखराव, टकराहट, अलगाव आदि को बड़े पैमाने में परिवार के स्तर पर देखा जा सकता है। जहाँ परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्य खंडित हैं। किसी का किसी से जुड़ाव नहीं है, जो कि आज के बहुत-से मध्यवर्गीय परिवारों का एक कटु सत्य है। जहाँ सभी एक छत के नीचे रहते हुए भी कोई किसी से बात करना पसंद नहीं करता या किसी को किसी की बात पसंद नहीं आती है। ऐसे घर में हमेशा ही एक तनाव का माहौल व्याप्त रहता है। इस सन्दर्भ में प्रतिभा अग्रवाल अपनी पुस्तक 'भारतीय साहित्य के निर्माता मोहन राकेश' में लिखती

हैं, “आधुनिक परिवेश में अपने जीवन और अपनी समस्याओं का ऐसा निर्मम और कटु साक्षात्कार कम देखने को मिलता है।”⁸⁵

‘पैर तले की जमीन’ उच्चवर्गीय समाज में लोगों के जीवन की विसंगति, अवसाद और घुटन को व्याख्यायित करता है। यह नाटक अस्तित्व संकट और उस संकट के बीच आज के आधुनिक मानव की पलभर परिवर्तित मनः स्थिति को दर्शाता है। इस नाटक द्वारा उच्चवर्गीय समाज के लोगों का एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयत्न है। कमलेश्वर इस नाट्य कथा को आधुनिक भाव-बोध से जोड़ तो सके, किन्तु उस ऊँचाई तक नहीं पहुँचा सके, जिस सफलता की ऊँचाई को मोहन राकेश के अन्य नाटकों ने प्राप्त किया है।

पात्रों के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि राकेश ने पुरुषों की तुलना में स्त्री पात्रों का चित्रण अधिक सशक्त और ठोस रूप से किया है। वे पुरुष पात्रों की तुलना में निर्णय लेने में अधिक सक्षम हैं। जैसे मल्लिका का कालिदास को उज्जयिनी भेजने का निर्णय लेना या कालिदास के न लौटने पर विलोम से शादी कर लेना, उसके निर्णय लेने की क्षमता को दर्शाता है। ‘लहरों के राजहंस’ में अपने अहम के साथ ही नन्द को स्वीकार करने का भाव भी सुन्दरी के ठोस व्यक्तित्व को ही उभारता है। ‘आधे अधूरे’ में महेन्द्रनाथ के बेरोजगार हो जाने पर आर्थिक रूप से घर को संभालना, सावित्री को इस नाटक के अन्य पुरुष पात्रों के मुकाबले अधिक सशक्त साबित करता है, “राकेश के तीनों ही नाटकों में स्त्री पात्र पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हैं। कई बार यह भी कहा जाता है कि ये नाटक स्त्री प्रधान हैं। स्त्री पात्रों की तुलना में पुरुष पात्र दुर्बल, संशयग्रस्त एवं दुविधाग्रस्त रहे हैं। कालिदास, नन्द और महेन्द्रनाथ तीनों ही इसके प्रमाण हैं। ये घर और बाहर के बीच दुविधाग्रस्त चक्कर काटते रहते हैं। इनके स्थान पर मल्लिका, सुन्दरी, और सावित्री अधिक संतुलित एवं व्यवस्थित हैं, उन्हें जो करना है या जो वे चाहती हैं उसके बारे में निश्चित हैं। यद्यपि तीनों पात्रों की स्थिति और मनोवृत्ति में पर्याप्त अंतर है, तथापि चरित्र की यह एकरूपता तीनों में है।”⁸⁶

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मोहन राकेश ने अपने नाटकों के माध्यम से आधुनिक जीवन और मानवीय संबंधों के बदलते स्वरूप को अति सूक्ष्मता से चित्रित किया है। उन्होंने समकालीन जीवन को चित्रित करने के लिए मिथकीय कथा एवं ऐतिहासिक पौराणिक पात्र चरित्रों के समावेश से आधुनिक भाव-बोध को प्रस्तुत किया है। अतः उनके नाटकों की कथावस्तु और पात्र-चरित्र दोनों ही में आधुनिक और परंपरागत तत्व मौजूद हैं। जीवन मूल्यों के प्रति आस्था भी है, जिससे कटकर आधुनिक मानव द्वंद्व में घिरा खंडित व्यक्तित्व का होता जा रहा है।

सन्दर्भ-

1. राकेश, मोहन; आषाढ का एक दिन; राजपाल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2011; पृ 8.
2. वही; पृ 14, 15 .
3. वही; पृ 46 .
4. वही; पृ 47 .
5. वही; पृ 95 .
6. चातक, गोविन्द; आधुनिक हिंदी नाटक का अग्रदूत मोहन राकेश; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, तीसरा 2016; पृ, 43, 44 .
7. रस्तोगी, गिरीश; मोहन राकेश और उनके नाटक; लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, उ.प्र.; संस्करण, 2008; पृ 45 .
8. मदान, इन्द्रनाथ; आधुनिकता और हिंदी आलोचना; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण-1975; पृ.144 .
9. राकेश, मोहन; आषाढ का एक दिन; राजपाल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2011; पृ 94.
10. चातक, गोविन्द; आधुनिक हिंदी नाटक का अग्रदूत मोहन राकेश; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, तीसरा 2016; पृ 55 .
11. रस्तोगी, गिरीश; मोहन राकेश और उनके नाटक; लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, उ.प्र.; संस्करण, 2008; पृ 47, 48 .
12. राकेश, मोहन; आषाढ का एक दिन; राजपाल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2011; पृ 99, 100 .
13. वही; पृ 16 .
14. वही; पृ 48 .
15. वही; पृ 48 .
16. रस्तोगी, गिरीश; मोहन राकेश और उनके नाटक; लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, उ.प्र.; संस्करण, 2008; पृ 51 .

17. गौतम, रमेश; हिंदी के प्रतीक नाटक; दरियागंज, नचिकेता प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण, 1979; पृ 26 .
18. राकेश, मोहन; आषाढ़ का एक दिन; राजपाल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 2011; पृ 95.
19. वही; पृ 46, 47, 48 .
20. वही; पृ 45 .
21. वही; पृ 53 .
22. रस्तोगी, गिरीश; हिंदी नाटक का आत्म संघर्ष; लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, उ.प्र.; संस्करण, 2008; पृ 139 .
23. राकेश, मोहन; आषाढ़ का एक दिन; राजपाल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2011; पृ 36, 37 .
24. वही; पृ 37, 38 .
25. रस्तोगी, गिरीश; मोहन राकेश और उनके नाटक; लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, उ.प्र.; संस्करण, 2008; पृ 53 .
26. राकेश, मोहन; आषाढ़ का एक दिन; राजपाल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2011; पृ 15.
27. वही; पृ 86 .
28. वही; पृ 27, 28 .
29. वही; पृ 28 .
30. रस्तोगी, गिरीश; हिंदी नाटक का आत्म संघर्ष; लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, उ.प्र.; संस्करण, 2008; पृ 141 .
31. राकेश, मोहन; आषाढ़ का एक दिन; राजपाल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, 2011; पृ 19, 20 .
32. रस्तोगी, गिरीश; मोहन राकेश और उनके नाटक; लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, उ.प्र.; संस्करण, 2008; पृ 54, 55 .

33. राकेश, मोहन; आषाढ़ का एक दिन; राजपाल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2011; पृ 58.
34. रस्तोगी, गिरीश; हिंदी नाटक का आत्म संघर्ष; लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, उ.प्र.; संस्करण, 2008; पृ 142 .
35. चातक, गोविन्द; आधुनिक हिंदी नाटक का अग्रदूत मोहन राकेश; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, तीसरा 2016; पृ 60 .
36. रस्तोगी, गिरीश; मोहन राकेश और उनके नाटक; लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, उ.प्र.; संस्करण, 2008; पृ 62 .
37. राकेश, मोहन; लहरों के राजहंस; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2017; पृ 59, 60.
38. रस्तोगी, गिरीश; हिंदी नाटक का आत्म संघर्ष; लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, उ.प्र.; संस्करण, 2008; पृ 153 .
39. राकेश, मोहन; लहरों के राजहंस; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण-2017; पृ.78, 79 .
40. वही; पृ 83 .
41. वही; पृ 118 .
42. मेंहदीरत्ता, वीरेन्द्र; मोहन राकेश का साहित्य; हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, संस्करण-1990; पृ 47 .
43. राकेश, मोहन; लहरों के राजहंस; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2017; पृ 125 .
44. वही; पृ 120, 121 .
45. वही; पृ 121 .
46. रस्तोगी, गिरीश; मोहन राकेश और उनके नाटक; लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, उ.प्र.; संस्करण 2008; पृ 66 .

47. चातक, गोविन्द; आधुनिक हिंदी नाटक का अग्रदूत मोहन राकेश; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, तीसरा 2016; पृ 83 .
48. राकेश, मोहन; लहरों के राजहंस; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2017; पृ 110 .
49. वही; पृ 130 .
50. चातक, गोविन्द; आधुनिक हिंदी नाटक का अग्रदूत मोहन राकेश; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, तीसरा, 2016; पृ 85 .
51. वही; पृ.86 .
52. राकेश, मोहन; आधे-अधूरे; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 1993; पृ 31 .
53. गौतम, रमेश; मिथक और स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी नाटक; नचिकेता प्रकाशन, विजय नगर,दिल्ली; संस्करण, प्रथम; पृ 60 .
54. चातक, गोविन्द; आधुनिक हिंदी नाटक का अग्रदूत मोहन राकेश; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, तीसरा, 2016; पृ 89, 90 .
55. राकेश, मोहन; आधे-अधूरे; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 1993; पृ 29, 30.
56. अग्रवाल, प्रतिभा; भारतीय साहित्य के निर्माता मोहन राकेश; साहित्य अकादमी, फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली; संस्करण, 1987; पृ 69 .
57. राकेश, मोहन; आधे-अधूरे; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 1993; पृ 12 .
58. अग्रवाल, प्रतिभा; भारतीय साहित्य के निर्माता मोहन राकेश; साहित्य अकादमी, फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली; संस्करण, 1987; पृ 71 .
59. चातक, गोविन्द; आधुनिक हिंदी नाटक का अग्रदूत मोहन राकेश; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, तीसरा, 2016; पृ 92 .
60. राकेश, मोहन; आधे-अधूरे; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 1993; पृ 90 .
61. चातक, गोविन्द; आधुनिक हिंदी नाटक का अग्रदूत मोहन राकेश; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, तीसरा, 2016; पृ 93 .
62. राकेश, मोहन; आधे-अधूरे; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 1993; पृ 91 .

63. वही; पृ 85 .
64. मेंहदीरत्ता, वीरेन्द्र; मोहन राकेश का साहित्य; हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़; संस्करण, 1990; पृ 68 .
65. चातक गोविन्द; आधुनिक हिंदी नाटक का अग्रदूत मोहन राकेश; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, तीसरा, 2016; पृ 97, 98 .
66. मेंहदीरत्ता, वीरेन्द्र; मोहन राकेश का साहित्य; हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़; संस्करण, 1990; पृ 66 .
67. राकेश, मोहन; आधे-अधूरे; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 1993; पृ 12 .
68. रस्तोगी, गिरीश; मोहन राकेश और उनके नाटक; लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, उ.प्र.; संस्करण, 2008; पृ 114 .
69. जैन, नेमिचंद्र; मोहन राकेश के सम्पूर्ण नाटक; राजपाल प्रकाशन, कश्मीरी गेट, दिल्ली; संस्करण, 2013; पृ 411, 412 .
70. वही; पृ 431 .
71. वही; पृ 424 .
72. वही; पृ 421 .
73. वही; पृ 432, 433 .
74. वही; पृ 415 .
75. वही; पृ 415, 416 .
76. वही; पृ 417, 418 .
77. वही; पृ 418 .
78. वही; पृ 372 .
79. वही; पृ 432, 433 .
80. वही; पृ 432, 433 .
81. वही; पृ 431 .
82. वही; पृ 375, 376 .

83. वही; पृ 415 .
84. वही; पृ 414 .
85. अग्रवाल, प्रतिभा; भारतीय साहित्य के निर्माता मोहन राकेश; साहित्य अकादमी, फिरोजशाह मार्ग,
नई दिल्ली; संस्करण, 1987; पृ 56 .
86. वही; पृ 58 .